प्रथमावृत्ति १००० -
संवत् १९८३

सूचना—

जिस किसी भाई को इस पुस्तक की जरूरत हो वे नीचे लिखे पते पर आध आने का टिकिट भेज कर मंगा लेवें

शिवचन्द अमोलखचन्द कोटेचा जैन;
मु. पो. शिवपुरी, गवालियर स्टेट.

॥ ॐ ॥

श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति, रतलाम.

जन्म दाता:-

श्रीमान् प्रसिद्ध वक्ता परिडत मुनि श्री १००८ श्री चौथमलजी महाराज

स्तम्भ

दानवीर रायबहादुर श्रीमान् सेठ कुन्दनमलजी लालचन्दजी साहब, ब्यावर

दानवीर श्रीमान् सेठ सरूपचन्दजी भागचन्दजी साहब ललवाणी, कलमसरा।

श्रीमान् सेठ पुनमचन्दजी चुन्नीलालजी कटारिया न्यायडोंगरी

सरक्षक

श्रीमान् सेठ श्रीमलजी लालचंदजी मु० गुलेजगढ़

रक्षक

श्रीमान् सेठ गणेशमलजी गुलाबचंदजी मु० जेना-

श्रीमती पिस्ताबाई लोहामंडी आगरा

श्रीसंघ मार्फत्-सेठ माणकलालजी नथमलजी राज नांदगांव

सहायक

श्रीमान् सेठ मोतीलालजी रामचन्दजी मु० नसीराबाद

" " बछराजजी रूपचंजी संगवी मु० खेड़ गांव

श्रीमान् सेठ इन्दरचंदजी वछराजजी रांका वागली
" " वक्तावरमलजी रतनचंदजी पो० भड़गांव
" " चांदमलजी सूरजमलजी मु० लासूर
" " चुन्नीलालजी तखतमलजी मु० घोटी वाजार
" " जुवारमलजी हजारीमलजी मु० खिलचीपुर
" " रामलालजी सुखलालजी चोरड़िया मु० वरोरा
" " जीतमलजी जीवनचंदजी मु० राज नांदगांव
" " लखमीचंदजी पुनमचंदजी नाहर चालीसगांव
" " वंशीलालजी गुलावचंदजी न्यायडोंगरी
" " चुन्नीलालजी भीमराजजी "
" " लखमीचंदजी फोजमलजी "
" " लालचंदजी हरखचन्दजी रोहिणी "
" " कचरदासजी हरषचंदजी मु० घोटी
" " सोभाचंदजी दलीचंदजी शेलगांव
" " रायचंदजी लालचंदजी मनमाड
" " नथमलजी रतनचंदजी "
" " नरायनदासजी पुनमचंदजी "
" " लादूरामजी मनोहरमजी, इगतपुरी
" " सरूपचंदजी भूरजी, वम्ब कोपर गांव

मेम्बर

श्रीमान् सेठ वखतावरमलजी वृद्धीचन्दजी मु० ब्यावर
" " लालचन्दजी मोतीलालजी मु० अंजनखेड़ा
" " ताराचन्दजी वेचरदासजी मु० धामनगाव
" " चौथमलजी पूरनमलजी मु० चेलदे
" " राजमलजी नन्दलालजी मु० चरणगांव

„ „ पन्नालालजी मोतीलालजी मु० सिवनी
„ „ सुखराजजी जेठमलजी मु० दारवा
„ „ डूंगरसिंहजी रतनचदजी मु० किशनगढ़
„ „ चुन्नीलालजी फूलचन्दजी मु० इन्दरठाणा
„ „ पूरखचंदजी हस्तीमलजी गुलेछा मु० छुईखदान
„ „ हेमराजजी जसराजजी संचेती मु० वरोरा
„ „ रावतमलजी चोराड़िया मु० वरोरा
„ „ चम्पालालजी लक्ष्मीचन्दजी वोहरा मु० वरोरा
„ „ छीतरमलजी गुलावचन्दजी वोहरा मु० वरोरा
„ „ जीवराजजी जसराजजी गोटी मु० ब्राम्ह
„ „ पीरूदानजी हीराचन्दजी चंडालिया मु० वरोरा
„ „ चुन्नीलालजी मोतीलालजी संगवी खेड़ गांव
„ „ गोविन्दरामजी रूपचंदजी संगवी खेड़ गांव
„ „ ताराचंदजी वीरदीचंदजी, वागली
„ „ कपुरचंदजी हंसराजजी, न्याय डोंगरी
„ „ रतनचंदजी चंदूलालजी, न्याय डोंगरी
„ „ ऊंकारलालजी विट्ठलजी, धार
„ „ हीराचंदजी गुलावचंदजी चालीसगांव
„ „ पेमराजजी कन्हैयालालजी उम्वर खेड़ा
„ „ चांदमलजी मुलतानमलजी लोढ़ा मनमाड
„ „ भीकमचंदजी केवलचदजी मनमाड
„ „ गुलावचदजी कचरदासजी भंडारी मनमाड
„ „ छगनीरामजी पेमराजी, वारी
„ „ खींवराजजी राजमलजी मनमाड
„ „ नवलखाजी दीपचंदजी इन्दोर
„ „ रायसाहेब किसनदासजी नंदरामजी येवला



लेखक—
श्रीमान् शंकर मुनिजी
महाराज

सचित्र मुख-वस्त्रिका-निर्णय

प्रकाशक—
श्रीमान् सेठ शिवचन्दजी
नेमीचन्दजी कोटेचा जैन
शिवपुरी

प्रकाशकः—
श्रीमान् सेठ शिवचन्दजी नेमीचन्दजी कोटेचा जैन
शिवपुरी



मुद्रक–जगदीशचन्द्र शर्मा "विशारद"
मैनेजर–श्री जैनोदय प्रिंटिंग प्रेस, रतलाम.



श्रीमान् सेठ शिवचदजी साहेब,
शिवपुरी

समर्पण

श्रीमान् !

परम पवित्र पूज्यपाद ! गुरुवर्य्य ! जगत वल्लभ ! जैन धर्म के सुप्रसिद्ध वक्ता मुनि श्री १००८ श्री "चौथमलजी" महाराज के कृपा कटाक्ष से मुझे सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्र प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । अतएव गुरु महाराज के चारु पाद पद्म में यह सामान्य सी भेट समर्पण करता हूं । मुझे आशा है कि श्रीमान् इसे अवश्य अपनायंगे, अथवा मेरे मनो बल साहस को बढ़ा कर श्री जिन शासन की सेवा करने में चेष्टित कर कृत कृत्य करेंगे, और मुझे निजात्म स्वरूप को चिंतवन करने का शुभ आशीर्वाद प्रदान करेंगे.

भवदीय—

पाद-पद्मयो रनुचर

शङ्कर मुनि.


वंदे मातरम्

भूमिका



प्रिय पाठकों ! आज कल हमारे जैन समाज के कतिपय सज्जन-गण इस प्रकार कथन करते हैं, कि जैन मुनियों के मुख पर-वस्त्रिका बांधने का रिवाज यह आधुनिक समय से चला है। इस प्रकार हमारे उन बंधुओंका कथन करना सर्वथा मिथ्या है। क्योंकि मुख पर मुख-वस्त्रिका बांधने का रिवाज आधुनिक समय से नहीं, किन्तु सनातन से चला आता है। हां हाथ में मुख-वस्त्रिका धारण करने वाले रिवाज के लिये आधुनिक समय से चला ऐसा कथन करें, तो उनका कथन अक्षरशः सत्य हो सकता है ! क्योंकि यह रिवाज द्वादश वर्षीय दुष्काल के जमाने में क्षुधा पीड़ित कंगले लोक आहारादि छिनने लग पड़े, तब इस दुसह्य-क्षुधा परिषह से पीड़ित होते हुए कतिपय उदरार्थी, मुनि नामधारियों ने अर्हत प्रभू प्रद-र्शित भेष में अतीव कष्ट समझ कर मुख से मुख-वस्त्रिका खोल के हाथ में धारण की। वहीं से यह नूतन (नवीन) रिवाज प्रादुर्भूत हुआ, आगे से नहीं ! यदि इसके लिये आधुनिक कथन करते तो हमारे भाइयों का कहना युक्ति युक्त हो सकता। किन्तु शास्त्र विहित मुख-वस्त्रिका मुख पर बांधने की सच्ची सनातनीय जैन प्रणाली को आधुनिक, समय से प्रादुर्भूत होने वाली नवीन प्रणाली को प्राचीन दिखलाना यह उन महानुभावों की अनभिज्ञता नहीं तो और क्या ? जो साक्षरी पंडित हैं वे तो मुख पर बांधने वाली ही प्रणाली को प्राचीन समझ-ते हैं। और शास्त्रोक्त विधि विहित मुख-वस्त्रिका को मुख पर बांध के धर्मानुष्ठानादि क्रियाओं का पालनभी करते हैं। नवीन प्रणाली के प्रचारको में इतना तो अवश्य देखने में आता है,

कि व्याख्यानादि देते समय, अवश्य मुख-वस्त्रिका मुख पर बांध के देते हैं। यह एक सदा सर्वदा मुख-वस्त्रिका मुख पर बांधी जाने वाली प्राचीन प्रणाली की सबूती के लिये ही हमारे मूर्त्ति पूजक समाज के नेताओं ने उस का कुछ अंश में अनुकरण करते हुए अद्यावधि पर्यन्त चले आ रहे हैं। इस प्राचीन प्रणाली को संयम धर्म का साधन समझ के ही पन्यास श्री धर्मविजयजी, विजयनीतिजीसूरि, विजयसिद्धिजी सूरि आदि महानुभाव व्याख्यान देते समय मुखपत्ती मुख पर बांध के देते थे। खरतर गच्छी कृपाचन्द्रसूरि को मुख पर मुख वस्त्रिका बांधकर व्याख्यान देते सं० १९७८ के साल रतलाम के चातुर्मास मे मैने स्वय आंख से देखा है। इसी प्रकार अंचलगच्छ वासी यति लोग व्याख्यान देते समय मुख पर मुख वस्त्रिका बांधते हैं। तथा पायचलगच्छ वासी श्रावक लोक प्रतिक्रमण करते समय मुख वस्त्रिका मुख पर बांध के करते हैं। इस पर से हमारे कतिपय जैन बन्धु, जो कि प्राचीन प्रणाली को आधुनिक बतला रहे हैं। वे अब विचार कर सकते है, कि यदि मुख-वस्त्रिका बांधने की प्रणाली अर्वाचीन होती तो, उक्त महानुभाव कुछ समय के लिये भी कदापि अनुकरण नहीं करते। किन्तु प्राचीन होने ही के कारण अद्यावधि पर्यन्त इसका अनुकरण करते हुए चले आ रहे हैं। पूर्व काल में सभी गच्छवासी यति लोग व्याख्यान देते तब मुख पर मुख-वस्त्रिका बांध के देते थे। इस विषय में 'सत्यार्थप्रकाश' के रचयिता स्वामी दयानन्दजी द्वादशम समुल्लास की पृ० ४८१ पं० १७ पर लिखते हैं, कि "जती आदि भी जब पुस्तक बांचते हैं तभी मुख पर पट्टी बांधते हैं" इस स्वामीजी के प्रमाण से निर्विवाद सिद्ध है, कि पूर्व काल में व्याख्यान के समय मुख पे मुख-वस्त्रिका बांध के व्याख्यान

देते थे। विक्रमीय सं० १९३१-३२ तक तो सभी गच्छवासी यति संवेगी लोग व्याख्यान देते, तब मुख-वस्त्रिका मुख पे वान्ध कर देते थे, वर्तमान काल में भी कतिपय गच्छवासी यति, संवेगी मुखपत्ती मुखपे वांध के देते हैं। उनमें से कितनेक के नाम तो ऊपर लिख चुके है । पाठकों ! आपको एक यह बात भी यहां पर समझा देना समीचीन समझता हूँ, कि सतत मुख-वस्त्रिका मुख पै बांधने वालों का, और व्याख्यानादि देते समय बाधने वालों इन दोनों का मन्तव्य निसंन्देह वायु-कायिक और तदाश्रित त्रसजीवों की रक्षा करने का है। न की और कोई, दोनों ने इस विधि को संयम का मुख्य साधन माना है । और दोनों मुख पर बांधना आगमानुकुल मानते हैं । तो फिर इस प्रश्न पर वाद विवाद करना, कि व्याखनादि देते वक्त कुछ समय के लिये बांधना समीचीन और सतत बांधना असमीचीन, यह सर्वथा व्यर्थ है । क्योंकि संयम के साधनों का अल्प या अधिक समय तक उपयोग किया जाय तो कदापि अनुचित नहीं है। जिनागमानूकुल उचित क्रियाओं का उचित ही फल होताहै अनुचित फल कदापि नहीं हो सकता । जिस व्यक्ति ने थोड़ी देरके लिये मुखपत्ती मुख पै बान्ध के धर्म क्रियाएं की उस को थोडा लाभ और जिसने विशेष काल के लिये बान्ध के यत्नाचार का पालन किया तो उसको विशेष लाभ की प्राप्ति होती है। कुछ समय के लिये बांधना उचित मानते हैं तो सतत बांधने वालों को भी किसी हालत में आप बुरा नहीं कह सकते। साधारण मनुष्य की तो बात ही क्या ? किन्तु बड़े २ पढे लिखे प्रमाद के चक्कर में गिर जाते हैं। इसी लिये प्रमाद के प्रवेश करने के फाटक को ही सतत बन्द कर रखने में आप को हानि ही क्या है । जैन

धर्म के सभी सम्प्रदाय में इस विषय पर तो किसी भी व्यक्ति का मत भेद नहीं है, कि प्रमाद (प्रमत्तयोग) के कारण ही हिंसा होती है। और जहां २ हिंसा है, वहां २ पाप कर्मों का वन्ध और संसार वृद्धि भी है। पाप वृद्धि और संसार भ्रमण का खास कारण प्रमत्तयोग ही को मानागया है। इसी कारण को मुख्यता में ग्रहण कर श्रीवीर परमात्माने मुमुक्षु मुनियों को, इस प्रमाद पिशाच से बचाने के लिये ही मुख वस्त्रिका की प्रतिपादना की, वह भी प्रतिपादना मुख्य एक अंग को ग्रहण कर की कि, उस अङ्ग के व्यातिरिक्त अन्य अंग पर धारण कर ही नहीं सकते। मुख पर वान्धने की आज्ञा भी उसी मुखपत्ती शब्द के अन्तर गत रही हुई है। कृपया निम्न लिखित मुखपत्ती शब्द की परिभाषा को ध्यान देकर पढ़िये! "मुख पोतते वन्धते सततं अनेन सा मुखपोतिका" अर्थात् जिस करके सतत (निरन्तर) मुख को वान्धा जाए, उसे मुखपोतिका कहते हैं। सतत शब्द ग्रहण करने का खास कारण यह है, कि मुनि को आहारादि याचना करते समय व शिष्यादिकों को सूत्रादि पठन पाठन करने आदि के लिये आज्ञा देने को हर वक्त बोलना पड़ता है। एवं शिष्यों को वाचनादि देने का तथा श्रावक, श्राविकाओं को त्याग, नियम करवाने अथवा मंगलिक उपदेश आदेश व्याख्यानादि देने का काम पड़ता है। उस समय मुख की यत्ना की तरफ ध्यान रखें या, मंगलिक आदि सुनाने की तरफ एक समय में दोनों ओर उपयोग रह सकता नहीं। परमात्माने एक समय में एक ही उपयोग फरमाया है। जिस समय मुँहकी यत्ना की तरफ ध्यान रहेगा, उस समय व्याख्यानादि की ओर ध्यान नहीं रहेगा और जब व्याख्यानादि की तरफ ख्याल रहेगा उस

समय मुँह की यत्ना की तरफ ध्यान नहीं रहेगा। इसी ही कारण जैन मुनि मुख-वस्त्रिका मुख पर सतत बांधे रहते हैं। नवीन प्रणाली के चलाने वालों ने भी एक समय में दो उपयोग नहीं, इसी वीर वाक्य पर ध्यान दे कर व्याख्यानादि देते समय मुखपत्ती मुख पर बान्ध कर देना, ऐसा प्रत्येक स्थल पर अपने रचित ग्रन्थों, टीका, भाष्य, निर्युक्ति में उल्लेख किया है। जो लोग अपने पूर्वाचार्यों की उक्त आज्ञा का पालन नहीं करते हुए मुखपत्ती को हाथ में ही रख कर व्याख्यानादि देते हैं। उस समय मुखपत्ती वाला उन का हाथ कभी बिलास भर, कभी हाथ भर दूर चला जाता है। जब व्याख्याता दोनों हाथों को फैलाता है, उस समय मुखपत्ती मुँह से कितनी दूर पर चली जाती है। जिस समय मुखपत्ती वाले हाथ को उपदेश दाता नीचे की ओर ले जाता है। उस समय कटि से नीचे घुटने के पास मुखपत्ती चली जाती है। और उपदेशक जी हृदय को दया विहीन कर बिना मुखपत्ती के खुल्ले मुँह से बेखटके बोलते हुए चले जाते है। भवभीरू दयार्द्रव-हृदयी पुरुषों के जरिये किसी प्राणी का यत्किंचित भी दिल दुःख जाता है तो वे उसका सारा दिन भर पश्चाताप करते रहते है। किन्तु, हमारे नवीन प्रणाली के प्रचारक मुनि नामधारी अहिंसा के उपासकों के हृदय में उन एक वक्त खुल्ले मुँह बोलने पर मरजाने वाले अपाहिज असंख्य वायु-कायिक जीवों पर तनिक भी दया प्राप्त नहीं होती। अफसोस? अफसोस !!

जिनागम विहित प्राचीन प्रणाली की उत्थापना कर हाथ में मुखपत्ती धारण करने की नवीन प्रणाली के जन्म दाताओं को नवीन योजना निकालते समय तो तनिक भी विचार नहीं हुवा, किन्तु अब उन को विचार उत्पन्न होने लगा कि उपदेश देते वक्त मुँह की यत्ना की ओर ध्यान रखें कि देशना की तरफ,

क्योंकि एक ही समय में दोनो तरफ उपयोग रह सकता नहीं ! अब क्या करना चाहिये, मुखपत्ती में धागा लगा कर मुंह पर बान्धना तो निषेध कर चुके हैं और उसी विधि को पुन: अंगीकार करेंगे तो जो धागा लगाकर मुखपर बांधने वाले हैं वे अपनी बड़ी भारी भद्द उडावेंगे। ऐसा विचार कर, एक और नवीन योजना उन लोगोंने यह निकाली कि अष्ट पड़ वाली मुंहपत्ती के ऊपर के दोनो कोने पर कपडे की कसें लगाकर, नाथ बावों की तरह दोनों कानों को बीच में से फड़वा कर उन छेद्रों में से कसें निकाल के कानों के पीछे गाठ लगाकर बांधने लगे। यह प्रणाली करीब विक्रमीय सं १६२३-२४ तक तो चलती रही, किन्तु कान फड़वाने में बहुत कष्ट होने के कारण यह प्रणाली थोड़े ही काल में प्रलय हो गई।

कुछ दिनों तक कान के नीचे की लो जो गृहवास की छेदन की हुई उस में नीम आदि की सींकें डाल के छेद्रों को कसे डालने योग बनाकर उन के अन्दर से कसे निकाल के कान पीछे गांठ लगाकर बान्धने लगे। यह रिवाज भी विशेष काल नहीं चला। थोड़े ही काल में सूर्य की भांति अस्त होगया। बाद कुछ दिनों तक दोनों कसे कानों के लपेट कर मुखपत्ती मुख पर बांधने लगे। कतिपय यति लोग कसें को कान ऊपर से गुद्दी के पीछे लेजाकर गाठ लगा के बांधने लगे। कुछ यति और सम्वेगी लोक मुखपत्ती को त्रिकोनी कर नाक और मुंह दोनों के ऊपर से लेकर गुद्दी पीछे दोनों कोने को लेजाकर गांठ लगा कर बाधने लगे। मुखपत्ती की ऐसी परिस्थिति में ही निम्न लिखित गाथा का प्रतिपादन हुवा हो ऐसा अनुमान प्रमान से ज्ञात होताहै।

उक्तंच—" सम्पाइम रयरेणु, परमज्झण ठावयइ मुहपोत्तिं ॥
नासं मुहं च बन्धइ, तीएव सहिं पमज्झंतो ॥ "

श्रीप्रकर रत्नाकर भा० ३ पं० १४२

इसी प्रकार येही गाथा "ओघनिर्युक्ति" की चूर्णि में भी उल्लेखित है:-इस विधि के साथ मुखपत्ती वान्धने की प्रणाली आज भी कतिपय गच्छों में चली आती है। विक्रमीय स० १६३१-३२ तक तो करीब २ सभी गच्छ वासी यति, सम्वेगी लोग मुखपत्ती मुख पर बाध कर व्याख्यानादि देते थे। बाद में शैने २ पुराने यति सम्वेगी मरते गए त्यों त्यों मुखपत्ती का बांधना भी यति सम्वेगियों में कम होता गया। और ज्यों ज्यों नई रोशनी के यति सम्वेगी पैदा होते गए, त्यों त्यों प्राचीन प्रणाली की निषेधना करते गए। वैसे ही इन लोगों में मुखपत्ती बाधना तो दूर किनारे रहा। किन्तु बाज २ यति सम्वेगियों ने पास में रखना भी छोड़ दिया। हमारे मूर्त्ति पूजक भाईयों के गुरुवर्य 'शतपदी' के लेखक उक्त ग्रन्थ के पृ० १५६ पर क्या लिखते हैं उक्तंच-

"मोपती विना मोंमां मछर, मखी, पाणीना विंदुके धूल पड़े छे, देशना देतां के छींकतां मोंना गरम वायु वड़े वाहरना वायुनी विराधना थाय छे। तथा आपणी थूंका ऊड़ीने बीजाने स्पर्शेछे" देखिये! मुख वस्त्रिका मुख पर न बांधने वालों के मुख में हड्डी, विष्टा आदि अशुद्ध वस्तु पर बैठी हुई मक्षिकादि उड़ कर मुंह में घुस जाती है। जहा पर पानी के फुआरे छूट रहे हों और उस के नजदीक होकर जाने का काम पड़े तथा वर्षात के दिनों में कच्चे पानी की बून्दे मुंह में गिरजाती है। देशना देते या छींकते समय मुंह की गरम वायु द्वारा बाह्य सचित वायु कायिक जीवों की विराधना होती है। तथा अपने मुंह की थूक उछल कर शास्त्र और गुरु आदि के ऊपर पड़ने से महान् आशातना लगती है। यदि हमारे मूर्ति पूजक बन्धु सात्वरी पने का दावा रखते हैं तो अपने पूर्वजों के उक्त लेख पर विचार करें और मुख-वस्त्रिका मुख पर बांधके सच्ची सनातनीय जैन प्रणाली

को स्वीकृत करें। विना इस विधि के स्वीकृत किये आपके मुंह की गरम वास्प द्वारा वाह्य सचित वायुकायिक जीवों की तथा तदाश्रित त्रस जीव उड के मुह में गिर कर मर जाने वाले जीवों की विराधना से आप हरगीज बच नहीं सकते। खैर ऐसी वाते तो अनेको है, सभी वातों को लिखी जाए तो एक वड़ा भारी ग्रन्थ तैयार हो जाए। किन्तु मुझे तो पाठको को जो खास मुद्दे की वातें लिख दिखाना है, उसी लाइन पर आना है। वे ये हैं कि आज कल मूर्ति पूजक भाइयों की तरफ से अनेक ग्रंथ छप कर तैयार हो के नवीन साहित्य के रूप में वाहार प्रगट हो रहे हैं उनको देख २ मनुष्यों के दिलों में वडा भारी विचारों का परिवर्तन होरहा है। उन परिवर्तन रूप विचारों की तरङ्गिणी की तरङ्गों में गोते मारते हुए वे कतिपय सज्जन गणों में से कतिपय तो कहते हैं कि मुखपत्ती का मुख पर वांधना यह सनातन से चला आता है, तो कोइ कहता है कि आधुनिक समय से चला, इस प्रकार के भ्रमोत्पादक प्रश्नों पर विचार कर मेरे परम पूजनीय गुरु वर्य्य, धर्माचार्य्य जगत् वल्लभ जैन धर्म के सुप्रसिद्ध वक्ता १००८ श्री चौथमल जी महाराज की आज्ञा से विक्रमाव्द १९७२ के साल पालनपुर के चातुर्मास से इस विषय को मैने अपने हाथ में लिया और आज दिन विक्रमीय सं १९८६ के फाल्गुणी पूर्णिमा तक के परिश्रम द्वारा पूर्वाचार्यों के रचित प्राचीन साहित्य ग्रन्थों के अवलोकन करने पर मुख-वस्त्रिका मुख पर वांधने विषयक प्राचीन चित्र और तद विषयक प्रमाण जो कुछ भी मुझे उपलब्ध हुए हैं, उन को 'सचित्र मुख-वस्त्रिका निर्णय, के रूप में जो सज्जन गण मुख-वस्त्रिका मुख पे वान्धने की सच्ची सनातनी जैन प्रणाली क्या है इस खोज मे है. उन महानुभावों

के सन्मुख रखता हुआ आशा करता हूँ, कि वे इसे पढ क
हाथ में मुँहपत्ति रखने की शास्त्र विरुद्ध आधुनिक समय
प्रचलित होने वाली झूठी प्रणाली को परित्याग कर जिनाग
मानूकुल मुँहपत्ति मुख पे बांध ने की सच्ची सनातनी जै
प्रणाली को स्वीकार कर भगवदाज्ञा के आराधिक बनें । व
यही मेरी हार्दिक भावना है । ओऽम् सिद्धा सिद्धिं मम दिसं

ले० चतुर्विधि श्री जैन संघ
का दास सौधर्म गच्छीय
शंकर-मुनि





श्रीमान् सेठ शिवचंदजी साहेब के सुपुत्र
श्रीमान् अमोळखचंदजी, शिवपुरी

Lakshmi Art Bombay 8

प्रकाशक का परिचय–

प्रिय महानुभाव! "ज्ञानमल केशरीचन्द" इस फर्म के वर्तमान काल में संचालक सेठ शिवचन्दजी एवं सेठ नेमीचंदजी हैं। आप ओसवाल जातीय श्वे० स्था० श्रमणोपासक सज्जन जन हैं। आपका आदि निवास स्थान, मेडले का है। यहां शिवपुरी में इस फर्म को स्थापित हुए करीव ६० वर्ष हुए होंगे। इस के मुख्य संस्थापक सेठ ज्ञानमलजी हैं। आपके पश्चात इस फर्म की वहुत कुछ उन्नति आप के पुत्र सेठ केशरीचन्दजी ने की। आप के वाद आप के सुपुत्र सेठ लालचंदजी हुए। आप के एक लघु भ्राता मूलचन्दजी साहव थोड़ी ही अवस्था में स्वर्ग वासी हो चुके थे। आप के हाथों से भी इस फर्म की वहुत ही उन्नति हुई। यह फर्म यहां के समाज में अच्छी मानी जाती है। इस के वर्तमान मालिक सेठ लालचन्दजी के सुपुत्र हैं। सेठ नेमीचन्दजी स्थानीय ऑनरेरी मेजिस्ट्रेट हैं। तथा वोर्ड साहुकारान और कोआपरेटिव वेंक के मेम्वर हैं। सेठ शिवचन्दजी वड़े सरल और मित भाषी हैं। दरवार में आपका अच्छा सम्मान है। आपको कई वार दरवार से पोशाकें इनाम मिली हैं। आप का ध्यान सदा सर्वदा दान धर्म की ओर विशेष तर रहता है। आपने ब्रह्मचर्य्याश्रम उदयपुर और आगरा अनाथालय में अच्छी सहायता प्रदान की है। आप का व्यापारिक परिचय इस प्रकार है। आपकी उक्त फर्म पर हुण्डी चिट्ठी तथा सराफी और कमीशन एजेंसी का काम भी होता है। आप की वम्वई, कलकत्ता आगरा आदि स्थानों पर एजेंसियां है। सं० १८९२ में शिवपुरी की स्थापना श्रावण शुक्ला पञ्चमी शनिवार पुण्य नक्षत्र के दिन शुभ मुहूर्त

में हुई । इसी शुभ मुहूर्त में आपने भी अपने निवास स्थान की नींव लगाई, वहीं से आप अपनी आर्थिक स्थितिका वल चढ़ाते हुए, व्यापारी वर्ग में अग्रगण्य वने । श्रीमान् सेठ शिव चन्दजी साहव के अमोलख चन्दजी नाम के एक पुत्र और दो प्रपोत्र, इसी प्रकार श्रीमान् सेठ नेमीचन्दजी के दो पुत्र और तीन वालिकाएं हैं। जैसे आप संसारी व व्यापारी वर्ग में अग्रगण्य हैं; वैसे ही आप श्वे० स्था० श्रमणोपासक समाज में भी अग्रगण्य है। उक्त समाज के आचार और विचारों से तथा जैन धर्म के पूरे २ मर्मज्ञ हैं। आपने अपने लिये अथवा अन्य भाईयों के धर्म ध्यानादि करने के लिये अपने निवासस्थान के निकट ही स्वकीय एक पोपधशाला भी स्थापन कर रखी है। आपके छोटे मोटे सभी घर भर वालों को धर्म की वहुत ही अच्छी लागणी है। आपने इस पुस्तक के व्यतिरिक्त और अन्य भी कई जैन धर्म सम्बन्धी पुस्तकें स्वकीय द्रव्य से छपवा कर अमूल्य वितरण कर अपनी धार्मिक उदारता का परिचय दिया है। अत' श्रीमानों से भी सादर सप्रेम नम्र निवेदन है कि उक्त धर्म प्रेमी सेठजी के अनुकरणीय कर्तव्य का अनुकरण करते हुए पाई हुई लक्ष्मी का ज्ञानादिक के प्रचारार्थ सदुपयोग करेंगे।

ॐ शांति ! शांति !! शांति !!! ॥

सचित्र मुख वस्त्रिका निर्णय.



यह फोटू श्री अर्हन्तप्रभु प्रदर्शित श्वेताम्बर जैन मुनियों के वेष विन्यास का सबूत दिलाने वाला, केवल परिचय के लिये दियागया है.

Jainodey P P Ratlam

विराजते मुखाम्भोजे, साधूनां मुखवस्त्रिका
रक्षिका सूक्ष्म जन्तूनां, दुरिच्छेद शास्त्रिका,,

व्याख्या-भो पाठकाः! सनातनीय श्वेताम्बरीय जैन यतीनां साधूनां मुखाम्भोजे वदन-कमले, मुखवस्त्रिका विराजते शोभते कीदृशा, मुखवास्त्रिका? उक्तं च,-एगविसंगुलायाय, सोलसंगुल विच्छिएणोः चउकार संजुयाय, मुहपोती एरिसा होई॥ अर्थात् एक विंशत्यंगुला परिमित दीर्घा, षोड्शांगुला परिमित विस्तीर्णा च चतुराकारसंयुक्ता, एतादृशा रूपा मुखवस्त्रिकां चारु दवरकेन सह मुखे वन्ध्यमाना विराजते-शोभते, पुनः कथं भूता? मुख वस्त्रिका वाह्य दृष्ट्या ऽदृष्ट सूक्ष्म जन्तूनां-जीवानाम् रक्षिका पालयित्री। पुनः कथं भूता? दुरितच्छेद शास्त्रिका, पाप नाशने पटीयसी, आयुध रूपाऽस्ति॥



मेरे विचार।



आज कल लोगों की अभिरुचि समाज सुधार की ओर प्रबलता से बढ़ी हुई है। और पुस्तकें भी सामाजिक विषय की ही विशेष लिखी जा रही हैं, परन्तु समाज सुधार का प्रारंभ कहाँ से होता है इसको बहुत थोड़े लोग जानते हैं। और इसीलिए उन्हें सफलता भी नहीं मिलती है।

संसार में वैद्यों की कमी नहीं है परन्तु अच्छा निदान करने वाले चिकित्सक बहुत थोड़े हैं। दवा देदेना जितना सामान्य और अदना काम है उतना रोग की परीक्षा करना नहीं। और रोग की परीक्षा के विना औषधी सेवन कराना रोग को घटाना नहीं, प्रत्युत बढ़ाना है।

आज कल के अधिकांश वैद्यों की जैसी दशा है, ठीक वैसी ही दशा हमारे समाज सुधारकों की भी हो रही है। उन्हें भी उन वैद्यों की तरह यह नहीं मालूम है कि, वे किस मर्ज़ की दवा कर रहे हैं।

वन्धुओं! मै बतलाता हूँ कि समाज सुधार का समारंभ कहा से होना चाहिए। समाज सुधार का आरंभ धार्मिक जगत् से किया जावे। धार्मिक उन्नति किए विना सामाजिक उन्नति हो ही नहीं सकती। धार्मिक विचारों को एक ओर रख कर सामाजिक उन्नति की आशा करना दुराशा मात्र है। धार्मिक जीवन के विचार सामाजिक जीवन कृपण जीवन है।

यदि सामाजिक उन्नति की भांति लोग धार्मिक उन्नति में लगजाएं, तो समाज सुधार अपने आप हो जा सकता है।

भद्र पुरुषों ! यह वीर वसुंधरा, यह पुण्य क्षेत्र धर्म की रंग भूमि है। अन्य देशों के अधिवासी भले और किसी तरह अपनी उन्नति करलें, परन्तु धर्म प्राण भारत वासी धर्म में ही अपनी उन्नति कर सकते हैं। क्योंकि यहां के जल वायु से पले हुए पुरुषों को प्रकृति सब से पहले धर्म का ही उपदेश करती है।

कालान्तर से मेरे हृद्धाम में यह भावना उठी थी कि, सच्चा समाज सुधार कब और कैसे हो सकता है? उस का प्रशस्त राज मार्ग कौनसा है? तब स्वत ही इन विचारों का प्रादुर्भाव हुआ कि, "लोगों को धार्मिक उन्नति के पथ पर अग्रसर किए जावें ! धर्म के तत्व बतला कर उन के सूक्ष्म रहस्यों का उद्घाटन किया जावे !! और उन की मार्म्मिक विवेचना द्वारा उसी में समाज की भलाई और उन्नति बतलाई जावे !!! सो इस के लिए धार्मिक पुस्तकें लिखी जाकर पाठकों के सामने रखना ही एक अच्छा उपाय है यही सोच कर मैंने इस में हाथ डाला है।

सब से प्रथम मेरीकृति पाठकों के सन्मुख यही मुखवस्त्रिका का निर्णय, रख रहा हूँ। क्योंकि मुखवस्त्रिका के सम्बन्ध में लोगों को बहुत कुछ सन्देह और गलतफहमी है। और मन्दिरमार्गी साधु महात्माओं को भी इसको मुंहपर बांधने में बहुत वाद विवाद और हटाग्रह है।

मैं इसमें सबसे प्रथम यह बतलाऊँगा कि 'यह मुखवस्त्रिका असल में है क्या पदार्थ, और इस शब्द का क्या अर्थ है।

और इस के पीछे, इसकी आवश्यकता और लगाने का कारण वतलाऊँगा, और साथ यह भी वतलाऊँगा कि,इसका प्रचार कव से हुआ। और कौन कौन लोग इसको मानते हैं। इसके पीछे शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध करूगा कि इसको हाथ में रखना चाहिये अथवा मुँह पर वंधी रखना ! और सव के अंत में हिंसा निवृति के अतिरिक्त स्वास्थ्य की दृष्टि से इसके शारीरिक लाभ भी वतलाऊंगा। ”

यह पुस्तक मैंने किसी वाद विवाद अथवा अपना पाण्डित्य दिखाने की दृष्टि से नहीं लिखी है, वल्के पक्षपात शून्य हो कर अपने विचारों मुआफिक सच्ची और शास्त्रीय विवेचना की है।

मुखवस्त्रिका का क्या अर्थ है और वह है क्या पदार्थ ।

मुखवास्त्रिका का अर्थ है''मुख का वस्त्र'मुँहका कपड़ा अर्थात् मुँह पर वाधने का वस्त्र। और मुखवास्त्रिका शब्द शिरोवेष्टन (पगड़ी) सिरपेच, अंगरक्षिका,(अगरखी) और पदरक्षिका, (पगरखी)की भांति योगिक शब्द है। अर्थात् सार्थक शब्दों में से है।

जैसे शिर पर लपेटी जाने वाली (पगडी) का नाम शिरोवेष्टन, अंग की रक्षा करने वाली का नाम अंग रक्षिका और पद की रक्षा करने वाली का नाम पदरक्षिका पड़ा है। और उस ही प्रकार मुँह पर वांधने वाली का नाम मुखवस्त्रिका पड़ा है। और इस ही लिए मुखवस्त्रिका को योगिक शब्द कहा है।

इस शब्द का अर्थ इतना वोधगम्य और सरल है कि, सामान्य पढा लिखा मनुष्य भी भली प्रकार समझ सकता

है। ऐसी दशा में इसके अर्थ की इससे ज्यादह व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है।

अब रही बात यह कि "क्या पदार्थ" सो यह वह पदार्थ है कि जो जैन साम्प्रदायिक साधु महात्माओं, मुनि महाराजाओं, और श्रावक श्राविकाओं के मुँह पर बन्धती है। और जिस को मुँहपत्ति (मुखवस्त्रिका) बोलते हैं।

श्रावक श्राविकाएँ इसको हर समय मुँहपर बंधी नहीं रखते है। सामायिक (एक प्रकारका आत्म चिन्तवन) पौषध (सारे दिन औ भर धर्म स्थानक में रहकर प्रभु स्मरण) के समये। परन्तु सन्त एवम् मुनियों के मुँहपर यह हर समय बंधी रहती है।

यह मुखवास्त्रिका दया के प्रचुर धनकी साकेतिग, कीर्ति ध्वजा है। तपस्वियों के तप साम्राज्य का राज्य चिन्ह है। अहिंसा के अकुपार का फेन है। समदर्शिता एवम् साम्यवाद का शृंगार है। भावी जीवन के सुरम्य सदन की ताली है। जीव हिंसा निवृत्ति का सुदृढ कपाट है। धर्म के आज्ञा पत्र पर लगाने की रजत मुद्रिका है। ममत्व मंजूषा के कपाट की यंत्रिका (ताला) है, और मनुष्य कर्तव्य की महिमा है। आशा है पाठक इसका परिचय पा गए होंगे।

मुख वस्त्रिका की आवश्यकता और लगाने का कारण।



जो लोग प्राणी मात्र पर दया रखना चाहते हैं जिन्होंने दया पालन अपनी इन्द्रिय वृत्ति बनाली है। उन लोगों को स्थूल और सूक्ष्म प्राणियों की रक्षा दया नहीं करना चा-

हिए ! और सो भी इस अवस्था में की उनके थोड़ेसे संयम और कष्ट से लाखों जीवों की प्राण रक्षा हो सकती हो।

इसका उत्तर वे यदि 'अवश्य करना चाहिए' इन शब्दों में देंगे तो इसमें उनके शिरपर जीव रक्षा का कितना बड़ा दायित्व आ पड़ेगा। इस को स्वयम् सोच सकते हैं। और इस का उत्तर उस समय उनके पास क्या रह जाएगा जबकी उन दया के लाड़लों को यह सुझाया जायगा कि, वे पूर्ण रुप से दया नहीं कर रहे हैं, और जानते हुए भी असाव धानी और उपेक्षा की शरण लेरहे हैं ! कुछ भी नहीं ?

भाइयों ? इस आकाशके भीतर असंख्याति असंख्य ऐसे जीवभी है कि, जो हमारी दृष्टि में नहीं आते और चलते फिरते और उड़ते रहते हैं। उन में से हम कितनों ही को 'सुक्ष्म दर्शक' यत्र [खुर्दबीन] द्वारा देख भी सकते हैं। फिर भी उन सब को यह हमारे चमड़े के नेत्र नहीं देख पाते। उन को तो हम ज्ञान द्राष्टि से ही देख सकते हैं। और उनका अस्तित्व सम्पूर्ण मतावलम्बी मानते है। ऐसी दशा में उनकी रक्षा करना भी आवश्यक माना गया है। और जब रक्षा करना आवश्यक माना जाता है तब उसके साधनों की भी खोज होती है और बनने हैं क्योंकि "आवश्यकताही आविष्कारों की जननी है।"

आकाश के भीतर अपरिमित संख्या में जो जीव हैं उन का खून हमारी असावधानी से होता है। हम चलते फिरते हाथ हुलाते और बोलने में उन्हे मार डालते हैं। और उस का पश्चात्ताप हमको तनिक भी नहीं होता है। इस में से कितने ही तो वे लोग है जो अपने थोड़े से सुख और असुविधा के पीछे इस ओर ध्यान नहीं देते हैं। और कितने ही

जानकारी नहीं रखने से अर्थात् अपनी अज्ञानता से इन जीवों की हिंसा करते हैं। परन्तु इन में दोषी दोंनो तरह के मनुष्य हैं। क्योंकि कानून नहीं जानने वाला व्यक्ति दण्ड से अपने को नहीं बचा सकता है। जब कि, जानकारी प्राप्त करने के लिए सब को स्वतन्त्रता है फिर नहीं जानने वाले लोग क्यों नहीं इसका ज्ञान प्राप्त करलेते है। हां ? जानने वालों का यह कर्तव्य अवश्य है कि, जिज्ञासु और अजान मनुष्यों को इस का मर्म बतलावे और इस का ज्ञान प्राप्त करावे, इसी लिए मैंने भी इस पुस्तक को लिखना आवश्यक समझा है।

संसार का ऐसा कोई धर्म नहीं है जो दया को न मानता हो। सब धर्मों में दया और अहिंसा की शिक्षा सब से पहले दी गई है। मनुष्य मात्र का कर्तव्य है कि, सारे जगत् के प्राणियों पर दया करे " आत्मवत् सर्व भूतानाम् " इस महावाक्य को न भूले।

मनुष्य हाथ पैर हिलाने और चलने, फिरने से शान्त रह सकता है। परन्तु बोलने से नहीं। कितने ही का स्वभाव होता है कि थक कर पड़जाने पर भी मुँह से निरर्थक और अनर्गल शब्द उगलता ही करते है।

उच्चारण और श्वास प्रश्वास द्वारा मनुष्य महान पाप कर डालता है अर्थात् मुँह की भाप से कोटान कोटि जीवों को जला देता है।

इस से सिद्ध हुआ कि, ज्यादह हिंसा मनुष्य अपने मुँह से ही करता है। और इस की रोक न करना कितना हानि कारक है।

इस हानि से बचने के लिए, इस महान् पातक से पीछा छुड़ाने के लिए मुखवस्त्रिका की आवश्यकता हुई। और इस ही लिए आदि पुरुषों ने इस का आविष्कार किया। और दयार्द्र महापुरुषों के इस को हर समय मुख पर धारण करने का कारण भी यही है।

मुखवस्त्रिका का प्रचार कब से हुआ और इस को कौन लोग बान्धते हैं !



कई धर्मों का प्रादुर्भाव पीछे से हुआ है अर्थात् कई संप्रदायों ने जन्म इस आधुनिक समय में ग्रहण किया है। इस प्रकार जैन धर्म युग धर्म और प्रचलित धर्मों में से नहीं है। प्रत्युत सनातन काल से पृथ्वी पर प्रचलित है।

कितने ही लोगों का कथन है कि, जब बुद्धने जीव हिंसा के भीषण काण्ड से उद्वेलित होकर बुद्ध धर्म अर्थात् अहिंसा का प्रचार किया था उस समय भगवान् महावीर भी प्रकट हुए और तब से ही जैन धर्म का जन्म हुआ है। परन्तु यह कपोल कल्पित मन घड़ंत है। जैन धर्म के अस्तित्व का पता तो विचारा इतिहास भी हार पा चुका है। इस धर्म का आदि काल अतीत के गर्भ में विलीन हो रहा है हां, भगवान् महावीर गौतम बुद्ध के समकालीन अवश्य थे। और उस समय तप और अहिंसा का प्रचार प्रबल रूप से हुआ था। परन्तु इस पर यह कहदेना कि, उसी समय में इस धर्म का प्रादुर्भाव हुआ है यह सिद्ध करना लच्चर और थोथी दलील है।

भगवान् महावीर तो चौवीसवे तीर्थंकर है। इन के पहले तेईस तीर्थंकर हो चुके हैं। यदि भगवान् महावीर से ही इस धर्म का प्रादुर्भाव हुआ होता तो तेईस तीर्थंकर पहले कैसे होगए? भगवान् महावीर ही पहले तीर्थंकर मानें जाते। परन्तु ऐसा नहीं है।

मुखवस्त्रिका का प्रचार भी इस धर्म के साथ ही से है। नया नहीं है क्योंकि यह तो जैनियों के दया पालन का मुख्य चिन्ह है।

नया प्रचार तो मुखवस्त्रिका को हाथ में रखने का श्वेताम्बरी संप्रदाय में हुआ है जिस को प्रमाणों के सहित आगे समझाऊंगा।

लेखक।





इसमें श्री आदिनाथ भगवान् का चित्र उल्लेखनीय है।

मुखवास्त्रिका को हाथ में रखना चाहिए ? अथवा मुंह पर बंधी रखना ?



मुखवास्त्रिका के अस्तित्व में तो किसी को सन्देह ही नहीं है। जैन श्वेताम्बरीय साधु अर्थात् २२ सम्प्रदाय वाले तथा मूर्ति पूजक एवम् श्रावक भी इसे मानते हैं । क्योंकि, जैनागमों में स्थल स्थल पर इसका वर्णन मिलता है, यदि प्रमाण रूप में उन सब को उद्धृत करें तो एक बड़ा पोथा इसीका बन जा सकता है। परन्तु जो बात निर्विवाद सिद्ध है उसका वर्णन करना अनावश्यक और निरर्थकसा है। फिर भी जिनकी इस में जानकारी नहीं है उन पाठकों के लिए थोड़े से प्रमाण की अवश्य आवश्यकता है। एतदर्थ इसके प्रमाण बताता हू और वे भी ऐसे वैसे ग्रन्थों के नहीं, भगवती सूत्र इत्यादि के, जिनको श्वेताम्बरी साधु एवम् श्रावक भी अपने माननीय और उपास्य सूत्र मानते हैं। देखिए ? भगवती सूत्र के दूसरे शतक के पांचवें उद्देश्य में क्या लिखा है ?

तएणं से भगवं गोयम छट्ठखमणं पारणगं सि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ बियाए पोरिसीए झाणं झियाए तइयाए पोरिसीए अतुरियं अचवलं असं भंत मुहपोत्तियं पडिलेहई २ त्ता भायणायं वत्थायं पडिलेहई २ त्ता भायणायं पम्मज्जई २ त्ता भायणायं उग्गिएहई २ त्ता।

अर्थात् उसके बाद गौतम स्वामी ने बेले (दो दिन के-

उपवास) के पारणे के दिन प्रथम प्रहर में सूत्र स्वध्याय की। द्वितीय प्रहर में ध्यान किया और तृतीय प्रहर में 'मुह पोत्तियं' (मुखवास्त्रिका) और पात्रों की प्रमार्जना की।

और ज्ञाता धर्म कथाङ्ग सूत्र" के सोलहवे अध्याय म भी' 'मुहपोत्तियं' शब्द की सिद्धि के लिए जिनेश्वर ने प्रति पादन किया है।

इस ही प्रकार ' उपासकदशाङ्ग-अन्तकृताङ्ग, 'अणुत्तरोव' वाई आदि सूत्रों में भी कई स्थलों पर इस का स्पष्ट रूप से वर्णन है।

इन प्रमाणों से पाठकों को भी अब विश्वास होगया होगा कि, मुखवास्त्रिका को मानने में तो किसी को आपत्ति नहीं है। आपत्ति है तो केवल मुंह पर बांधने में। और वह भी किस को? केवल श्वेताम्बरीय मन्दिर मार्गीय साम्प्रदायिक को? और इस का वाद विवाद कालान्तर से हो रहा है। संसार के सामने इस विषय को वास्तविक चोला पहनाने का प्रयत्न आज तक किसी ने नहीं किया। जिस किसी ने भी इस पर लेखनी उठाई पक्ष पात को एक ओर रख कर नहीं। अपने अपने मत की ओर खींच कर अपना पाण्डित्य प्रदर्शित किया है। अथवा वितण्डावाद द्वारा अपनी वाणी को दूषित किया है। अतः आवश्यकता समझ कर आज इस में मैं अग्रगामी हुआ हूं। मै इसका वर्णन करने में तटस्थ रहूंगा। और पक्षपात रहित होकर इस की सच्ची समालोचना करूंगा।

संभव है, सत्य को पसन्द नहीं करने वाले कितने ही महानुभावों को मेरी कड़ी आलोचना अखरे। परन्तु मुझे उनके

प्रसन्न और अप्रसन्न होजाने की परवाह ही क्या है ? मुझे तो सत्य की परवाह करनी चाहिए कि, जिस के बलपर संसार स्थिर है । मुखवस्त्रिका मुह पर ही बंधना चाहिए। यदि इसे मुह पर न बांधी जावे तो न तो इस से कोई लाभ ही हो सकता है । और न इस का नाम' मुखवस्त्रिका, रखने की ही आवश्यकता पड़ती । यदि बुद्धि द्वारा इस के नाम पर विचार किया जावे तो इस की असलियत समझ में आजाना कुछ कठिन नहीं है ।

काम से नाम की रचना होने की प्रथा आज से नहीं है । सृष्टि के आदि काल से है । राजा इस लिए कहते हैं कि, वह प्रजा को रञ्जन करता है और उसे हीभूपाल इस लिए कहते है कि, वह पृथ्वीको पालता है। पानी पीनेके भाजनका गलव्यास (जिसका अपभ्रंश गिलास है) इस लिए कहते हैं कि, उसका गला चौड़ा है । ऊपर के कमरे को अट्टालिका (अट्ट-आलिका) इस लिए कहते हैं कि, वह ऊंचा है । पगड़ी को शिरोवेष्टन इस लिए कहते हैं कि, वह शिर पर लपेटने की वस्तु है । अंगरखी का नाम अंगरक्षिका इसीलिए हुआ कि वह अंग की रक्षा करती है । पगरखी का नाम पद रक्षिका इसीलिए पड़ा है कि, वह पद की रक्षा करती है । हरिणको मृग गति इस लिए पुकारते हैं कि, वह बहुत तेज दौड़ता है । बन्दरों को शीखामृग इस लिए कहते हैं कि, वे वृक्ष की साखों पर भागते हैं । क्षत्रियों को राजपूत (राज पुत्र) इसलिए कहते हैं कि, वे राजा के पुत्र हैं बद्दलों को नीर धर इस लिए कहते हैं कि, वे जल को धारण करने वाले हैं । कुंचों को पयोधर इस लिए कहते हैं कि, वे दुध धारण करते हैं । महलों का नाम 'महालय' इस लिए हैं कि, वे बड़े घर हैं । जल

के जीवों को जलचर इस लिए कहते है कि, वे जल में विचरण करने वाले हैं। उड़ने वाले जन्तुओं को नभचर इस लिए कहते हैं कि, वे आकाश गामी है। इनका वर्णन कहां तक करूं। ऐसे नामों की संख्या अपरिमित है। इन उदाहरणों से मेरा भाव यह है कि, जैसे उपरोक्त नाम कामके साथ है, उस ही प्रकार मुखवस्त्रिका का नाम भी काम से ही रचा गया है। अर्थात् मुखपर बंधती है इसी लिए उसका नाम मुखवस्त्रिका पड़ा है।

यदि मन्दिर मार्गी भाइयो के कथनानुसार यह हाथ में रक्खने का वस्त्र होता तो इसका नाम हस्तांडा अथवा रुमाल पड़ता। मुखवस्त्र का कभी नहीं होता। और सूत्रों म भी मुहपोत्तियं, के स्थान में 'हत्थपोत्तिय, लिखा मिलता अब इस म तार्किकों की यह शंका होसकती है कि, सूत्रोा मुहपोत्तियम् शब्द का अर्थ केवल 'मुंह का वस्त्र 'ही होता फिर बांधना अर्थ कैसे लगाया। सो इस शंका का निर करण इस प्रकार हो सकता है कि, सूत्र भाव गंभीर होते उन्ह में थोड़े शब्दों में लम्बा चौड़ा आशय भरा रहता है सूत्रों को समझाने के लिए पण्डितों ने उन पर वृत्ति औ व्याख्या की रचना की है। और उनको, छोटे छोटे सूत्रों व बोधगम्य बनाने के लिए महान भाष्यों का निमार्ण करा पड़ा है। यही क्यों सूत्र, शब्द की व्याख्या ही का दाखि "सूत्रयन्ति वेष्टयंति अल्पाक्षर बहून्यर्थाणि इति सत्रम् अथ थोड़े अक्षरो में बहुत अर्थ हो उसे सूत्र कहते है

सूत्रों के अर्थ मे प्राय लक्षणा होती है। जैसे भारत वर्ष मिक है, इसमें अभिधान के अनुसार भारत वर्ष एक देश

नाम है और देश धार्मिक नहीं हो सकता, परन्तु इस जगह लक्षणा से 'भारतवासी लोग धार्मिक है, यह अर्थ लिया जाएगा। ठीक इस ही प्रकार 'मुखवस्त्रिका का अर्थ भी मुखपर बधने वाला वस्त्र लिया जायगा। क्या, लक्षणा से इस प्रकार का अर्थ करना माननीय है! और उस का प्रयोग कहां तक होता है! ऐसे प्रश्न तार्किकों के फिर भी होसकते हैं। ऐसी दशा में इसका उत्तर देदेना भी अनुचित नहीं होगा। और वह भी युक्ति युक्त और उदाहरणों सहित होना चाहिए।

प्रिय पाठक! इसको तो सारे विद्वान मानते है कि, लक्षणा, साहित्य का एक मुख अंग है। और लक्षणा ही काव्य को भाव पूर्ण बनाती है। उस काव्य का, काव्य जगत् में कोई आदर नहीं होता जिस में शब्दों का बाहुल्य और अर्थ की अल्पता हो। उत्तम काव्य तो वह है जो थोड़े शब्दों में ज्यादह भाव व्यक्त कर सके और उसका तात्पर्यार्थ लिया जा सके। और ऐसा जो काव्य होगा उसमें और २ अंगों के साथ लक्षणा ज़रुर होगी ऐसी स्थिति में लक्षणा से अर्थ करना क्यों सही और सत्य नहीं है। अवश्य है। जिस को थोड़ा भी साहित्य का ज्ञान है वह इसके मानने में ज़रा भी आगा पीछा नहीं होसकता है

अब मुझे यह समझाना है कि, इस का प्रयोग कहां तक होता है सो इसका प्रयोग तो प्रत्येक मनुष्य की जिह्वा द्वारा नित्य प्रति हुआ ही करता है और उस में तार्किकों का कोई गुजर ही नहीं है।

देखिए? कोई किसी को यह कहे कि,पानी लाओ तो क्या तार्किक महाशय उसमें यह शंका करेगा कि, लोठे में भर कर लाने का अर्थ इस में से नहीं निकलता है। गलत! पानी जब

लाया जायगा तो पात्र के बिना नहीं आसकता है परन्तु पात्र के लिए कहने की कोई आवश्यकता नहीं रहती है। इस ही प्रकार 'रोटी खाओ, इस शब्द में से यह अर्थ नहीं निकलता है कि, हाथ से लेकर मुह से खाओ, दन्तों से चबाओ। परन्तु जिस के हृदय के नेत्र हैं वे समझ ही लेते है कि, हाथ के द्वारा तोड़कर रोटी मुखसे ही खाई जाती है। और कोई साधन नहीं है। और भी बताता हू कि, कोई किसी को यह आदेश करे कि, घर जाओ तो क्या जानेवाले को जूते पहन कर पावसे चलने की बात भी समझानी पड़ेगी। कभी नहीं। रथी अपने सारथी को रथ लाने की आज्ञा देगा तो 'रथ लाओ, केवल इतना भर बोलेगा इसके शब्दार्थ में घोड़े जोत कर लाओ इतना मतलब नहीं निकलता। परन्तु रथ घोड़े जोत-कर ही लाया जाता है। अत: सारथी को इतना कहने की आवश्यकता नहीं है। अर्थात् रथलाओ, इसी का अर्थ घोड़े जोतकर लानेका होजाता है।

ऐसे सहस्रों सांकेतिक शब्द हैं जिनके कहते ही उनका सारा आशय लोगों की समझ में शीघ्र ही आजाता है। वैसे ही शब्दों में से 'मुखवस्त्रिका शब्द भी है और इसका अर्थ भी लक्षणा से यही होगा कि, मुह पर बाधनेका वस्त्र।

यदि सम्पूर्ण जगत् तार्किकों से ही भरा हुआ होतो संसार में कोई कार्य्य ही नहीं हो सकता। और जीवन भारवत होजाय। तर्क हरबात में हरकार्य में हो तो सकती है। परन्तु बात २ पर तर्क करना अच्छे और सच्चे आदमियों का काम कदापि नहीं है। सभ्य संसार ने ऐसे मनुष्यों की गणना छिद्रान्वेषियों में की है। ससार में कोई किसी का पक्ष ग्रहण

करना चाहे तो सत्यका, अन्यथा वह दुरग्रही साबित होगा। और विजय लक्ष्मी भी उसको प्राप्त नहीं होगी। कोई मनुष्य जब किसी नये बिखेड़े को खड़ा करता है तो संसार के सम्मुख वह झूठा प्रमाणित होने पर भी उसकी दुम पकड़े ही रहता है। परतु यह उसकी कम जोरी है। अपराध और भूल को स्वीकार नही करना हृदय दौर्बल्य है! मानसिक निर्बलता है। अच्छे आदमी एसा कभी नहीं करते। वे अपनी भूलों को लोगों के सामने रखने में कभी नहीं हिच किचाते। बल्के खुले शब्दों में उसे स्वीकार करके अनजान मनुष्यों को सचेत करते है कि, उनके तरह और कोई ऐसी भूल न कर बैठे। महान् पुरुषों की छोटी २ भूलों ने संसार में बहुत बड़ा बिगाड़ किया है।

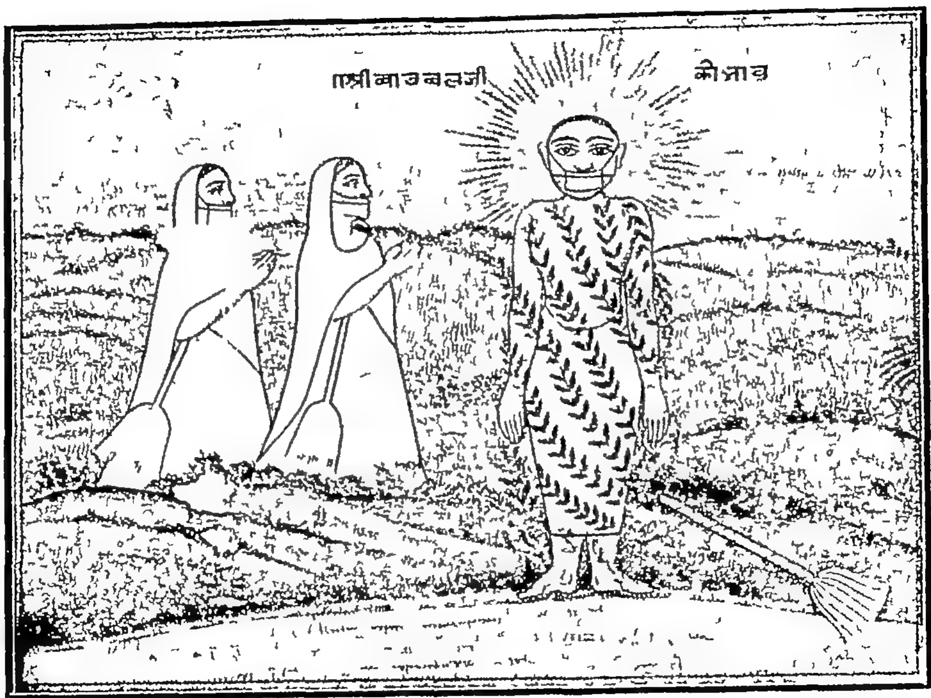
बड़े आदमियों और समाज के नेताओ पर समाज के हानि, लाभ का बहुत बड़ा दायित्व है। इसलिए कि, 'महाजनो येन गत॰ स पंथः 'इस उक्ति के अनुसार छोटे आदमी सदा से बड़ों का अनुकरण करते आए हैं। यदि बड़े कोई गलती कर-जाए और उसको वे छुपा कर उसका सुधार न करले तो छोटे तो उस भूल को ही अपना आदर्श मानलेते है और उससे समाज की कितनी हानि होजा सकती है इसको विचारशील पाठक सोच सकते हैं।

हां, अच्छे और बुरे को सोचे विना ही बड़ों का अनुकरण करना निरान्ध विश्वास जरूर है। परन्तु जिन में सोचने की ताकत ही नहीं है वे बड़ों के नाम पर बिकते रहें तो इस में आश्चर्य ही क्या है। ऐसे ही मुख वस्त्रिका को पहले किसी एक ने प्रमादवश यद्वा मुह पर बान्धने की अटपटी

से हाथ में रखली होगी वही वात पकड़ा गई और उसी पर आज सारे श्वेताम्बरी मन्दिर मार्गी साधु व श्रावक उतर पड़े है। परन्तु उन्हें यह पता नहीं है कि, उन लोगों में पहिले मुख वस्त्रिका मुंहके ही ऊपर वांधी जाती थी। हाथ में नहीं रक्खी जाती थी।

अन्ध परंपरा और महजव के नाम पर ना समझलोगों ने कितने ही हत्या काण्ड करडाले है। परंपरा क्या पदार्थ है? महजव क्या चीज है?? इसका समझना सामान्य पुरुषों का काम नहीं है। अधिकाश मनुष्य नारकीय यातना के भय से ही किसी काम को नहीं करते और स्वर्गीय सुखों की लालसा से ही किसी कार्य्य को सम्पादन करते है। परन्तु उन्हें वास्तविक ज्ञान नहीं होता है। वे अच्छा समझकर किसी काम को करते हो और वुरा समझकर छोड़ देते हो सो वात नहीं। नरक का भय और स्वर्ग की लालसा ही उनके कर्त्तव्य की कुंजी है। परन्तु मानव धर्म वड़ों के नाम पर विकने की सलाह कभी भी नहीं देता। वड़े वुरा काम कर जाएँ तो छोटों का यह काम कदापि नहीं है कि, वे भी वैसा ही करें। यद्यपि उन्होंने भ्रम में पड़कर कुछ दिन वैसा कर भी लिया हो तथापि अव तो उनको उन्ह कुरूढ़िया से परहेज करना चाहिए। चित होजाने पर भी पहलवान ताल ठोंकता रहे और पहलवानी का लंगर पहने रहे तो यह उसकी धृष्टता नहीं तो और क्या है। मनुष्यत्व तो इसी में है कि, अपनी भूलों का सुधार करले। मुखवस्त्रिका को पहले किसी ने भूलकर हाथमें रखली और मुंह पर नही वांधी तो क्या जरूरत है कि, हम भी वैसा ही करे। मसलन मशहूर है कि, किसी स्थान पर कुत्ते के काम फड़ फड़ाने से उसका गलूड़े (कीट विशेष) उछल कर

(चित्र परिचय के लिये, वन्दने के लिये नहीं)



बाहुबलि मुनिको ब्राह्मी सुन्दरी आर्यिकाजी अर्ज कर रही हैं।

कथा करने वाले के मुंहमें आगिरी उसने शीघ्र ही थूक दिया। उसका अभिप्राय श्रोताओं ने यह समझा कि, कुत्ते के कान फड़ फड़ाने पर थूकना चाहिए। और कथा करने वाले का सबने अनुकरण किया। अर्थात् थूका। कथा भट्ट महान् दंभी था, उसने किसी को थूकने का कारण नहीं समझाया, तब से यह प्रथा प्राचलित हो गई कि, कुत्ते के कान फड़ फड़ाने पर लोग थूकते हैं। आज उन्हें थूकने से मना करते हैं तो परंपरा के अधभक्त नहीं मानते हं और कहते हैं, हम तो जैसा पहले से करते आए हैं, उसे नहीं छोड़ेंगे। परन्तु इस में बुद्धिमानी नहीं है।

मुझे आज कोई दलीलों से सिद्ध करके किसी बात को समझा दे तो मैं कालान्तर की ग्रहण की हुई बात को एक क्षण भर में छोड़ देने के लिए प्रस्तुत हूं। इस ही प्रकार मन्दिरमार्गी भाइयों से प्रार्थना है कि, वे भी मुखवस्त्रिकाको हाथ में रखने की हटको छोड दें। यह तो मुख पर बांधने की ही वस्तु है। हाथ में रखने की नहीं, न यह हाथ में शोभा ही पाती है। क्योंकि कोई भी पदार्थ अपने स्थान के विना शोभित नहीं होता। कहा है " स्थान एव हि योज्यन्ते, भृत्याश्चा भरणानि च। नहि चूड़ामणिः पादे, नूपुरं मस्तके यथा " ॥

अर्थात् भृत्य और भूषण को अपने २ स्थान पर ही रखने चाहिए। चूड़ा मणि (बोर) पैर में और नूपुर मस्तक पर धारण नहीं किया जा सकता। किसी कविने और भी कहा है "मुकुटे रोपित. काचः, चरणा भरणे मणिः। नहि दोषो मणेरस्ति, किन्तु साधोर विज्ञता "॥ अथात् मुकुट में तो कांच का टुकड़ा और पैर के भूषण मे मणि लगाई जाय

तो इस में मणिका दोष नहीं है। बल्कि जड़िया की बुद्धिमत्ता है। अर्थात् मूर्खता है। कविका भाव यह है कि, जो पदार्थ जहां रहना चाहिए उसको वहा ही रखना योग्य है,अन्यथा वह पदार्थ भी निकम्मा होजाएगा और योजक की भी नासमझी प्रकट होगी

यही बात मुखवस्त्रिका के सम्बन्ध मे भी है। उसको हाथ में रखने से न तो उसका यह (मुखवस्त्रिका) नाम ही शोभित होता है न उस से कुछ लाभ ही है। क्योंकि मुखवस्त्रिका विशेषतः जीवहिंसा निवृत्यर्थ मुख पर बांधी जाती है। और मुखपर बंधी रहने से उससे और भी कई लाभ है जिन्हें मैं आगे चल कर बताऊंगा। ऐसी दशा में यदि उसे मुखपर न बांधी गई तो उससे क्या लाभ हुआ और उसकी मुखवस्त्रिका सज्ञा भी कैसे हो सकती है। वह तो दस्ती रुमाल है। अजा के गले में लटकने वाले स्तन से न तो दूध ही निकलता है। न गले की शोभा ही। इस ही प्रकार यह मन्दिर मार्गी भाइयों की मुखवस्त्रिका, भी निरर्थक सी ही है। क्या मैं आशा करूं कि, मन्दिर मार्गीय महानुभाव मेरी सच्ची और बेदाग दलीलों को हृदय में स्थान देंगे। और उनका निर्णय मुझ तक पहुंचावेगे ? कदाचित ऐसा हो ? मन्दिर मार्गीय भाई प्राय एक ही प्रमाण मुखवस्त्रिका को हाथ मे रखने की दलील के लिए पेश किया करते है वह क्या है ? और किस मूल का है ? उस का स्पष्टी करण कर देना भी बहुत आवश्यक प्रतीत होता है क्योंकि, उनके प्रमाण का उत्तर दिए बिना सत्य और झूठ का निर्णय नहीं होसकता है। अच्छा तो उसका स्पष्टी करण भी सुन लीजिए। वे लोग कहते हैं कि, 'दुःख विपाक, सूत्र के द्वितीय स्कन्ध मे लिखा है।

जेणेव भूमिघरे तेणेव उवागच्छई २ त्ता चउ पड़लेण वत्थेणं मुहं बंधेई २ त्ता भगव गोयम एवं वयासि तुज्भेणं भंते मुहपोतियाए मुहं बंधइ ॥

इस का यह अर्थ है कि, जिस ओर भूमि घर था उस ओर मृगावती ने आकर चार पड़ के वस्त्र से मुख बांधा। और भगवान् गौतम स्वामी को भी कहा कि, आप भी मुहपोत्तिया से मुख बांधले। सो यदि मुंह बंधा हुआ होता तो गौतम स्वामी से रानी पुनः मुंह बांधनेका प्रस्ताव क्यों करती ?

ठीक है ? रानी ने गौतम स्वामी को ऐसा ही कहा था, इस को हम भी मानते हैं परन्तु रानी का अभिप्राय उस कथन से मुखवस्त्रिका बान्धनेका कदापि नहीं था। वे यदि इस में पूर्वापर सम्बन्धिय सारे सूत्र को बताते तो पाठक उन्ही से समझ जाते। और मेरे उत्तर देने की भी आवश्यकता नहीं रहती। परन्तु केवल एक ही सूत्र का अंश अपनी दलील में रखकर अनजान भाईयों को भ्रम मे डालने की कोशिश की गई है। यह एक ऐसा प्रयत्न है, जैसाकि पुनर्विवाह के सम्बन्ध में आर्य्य समाजी भाईयों ने सनातन धर्म्मी बन्धुओं को मनुस्मृतिके कतिपय श्लोकों का प्रमाण देकर भ्रममें डालने का किया था। परन्तु जिन श्लोकों में मृत भर्त्ताओं का पुनर्विवाह करना लिखा है उनसे आगे के श्लोकों में ही वर्णन है कि, "यह पुनर्विवाह की प्रथा महाराज वेणु ने प्रचलित की थी परन्तु यह बुरी प्रथा थी एतदर्थ इसको रोकदी गई और आगे भी इसके जारी रखने की आवश्यकता नहीं है'। अब कहिए यदि किसी को मनुस्मृतिका ज्ञान न हो और आगे के श्लोक न पढ़े तो वह भ्रम में पड़ेगा या

नहीं ? मनु महाराज ने तो राजा वेणु के समय की प्रथाका वर्णन कर उसका खंडन किया है अर्थात् एक भारी ग्रन्थी को खोला है। और आर्य्यसमाजी भाई पूर्वापर सम्बन्ध छोड़कर बीचके श्लोकों को प्रमाण में रखते है। परन्तु जिस वेणु के अत्याचार से पृथ्वी पीड़ित होउठी थी और अत्या चार के कारण वह नाश को प्राप्त हुआ था और उसके मन्थन से महाराज पृथु प्रकट हुए थे उसी वेणु की दूषित प्रथा को धर्म का रूप दे देना जितना आर्य समाजी भाइयों को शोभा देता है। उतना ही यह मुखवस्त्रिका को हाथ मे रखने का प्रमाण मन्दिरमार्गी भाइयो को भी शोभा देरहा है। एक प्रसिद्ध कवि ने कहा है "अपने मतलब के प्रमाण शैतान भी शास्त्रो में से देसकता है" *

इस सूत्र में जो पूर्वापर सम्बन्ध छूट गया है उसका वर्णन किए बिना इस शंका का समाधान नहीं होगा। अत. उसका वर्णन करता हूँ॥

वाचकवर्ग ? दो हजार वर्ष पूर्व की घटना है "एक दिन गौतम स्वामी भिक्षाशन प्राप्त करने के लिए बस्ती मे पधारे। वहा एक दु:खित आत्मा बहते हुए व्रणों से युक्त शरीर के अत्यन्त दुखी भिखमंगे को देखा। स्वामी ने दयार्द्र होकर विचार किया, कि इस मनुष्यके लिये तो यह लोक ही नर्क होरहा है। इससे बढ़कर नर्क की यंत्रणा क्या हो सकती है ? लौटने पर भगवान महावीर से उस मंगते की दारुणय व्यथा का वर्नन कारुण्य पूर्ण शब्दो में किया। इस पर भगवान ने कहा' गौतम नर्क में तो इससे भी बढ कर दु ख है यदि इस रहस्य को जान-

* देखो 'चांद' का नवम्बर मास की सन १९२४ का अङ्क

ना है, तो मृगा नाम्नी रानी के मृगा लोढ़ा नामक पुत्र है, उसे जाकर देखो ? उसके न हाथ है न पैर ? केवल पिन्ड मात्र है। और वह महान् दुःखी है। इस पर गौतम स्वामी उस लड़के को देखने के लिए पधारे। भगवान् गौतम का आगमन सुनते ही रानी मृगावती सामने आई। और गौतम स्वामी का स्वागत किया। आगमन का कारण जानने पर रानी ने कहा"भगवन् ? यदि आप उस लड़के को देखना चाहते हैं तो मुंह बांध लीजिए, उस के पास बड़ी दुर्गन्ध आती है" इस मुंह बाध लेने से रानी का अभिप्राय नाक पर कपड़ा लपेटने से है, न कि मुखवस्त्रिका बांधने से।

इस में पाठक यह शंका करेंगे कि, यदि यही बात थी तो नाक बांधने के लिए क्यों नहीं कहा ? इसका यह उत्तर है कि, प्राय-दुर्गन्ध के स्थान पर लोग मुंह के आड़ा पल्ला देदो मुंह बांधलो ! ऐसा ही कहा करते हैं। अर्थात् प्रयोग में यही वाक्य आता है। और इस लिए रानी ने भी नाक बांधने के स्थान में मुंह बाधने के लिए कहाथा , मुख वस्त्रिका के लिए नहीं। भगवान् गौतम के मुख पर मुख वस्त्रिका तो प्रथम ही बन्धी हुइ थी। यदि ऐसा नहीं था तो हम तार्किकों से यों पूछते हैं कि, क्या, गन्ध, मुख ग्रहण करता है ? कभी नहीं ? न्याय में लिखा है 'घ्राण ग्राह्यो गुणागन्ध' अर्थात घ्राणेन्द्रिय (नाक) से गन्ध की पहचान होती है। इसको तो मन्दिर मार्गीय महानुभाव भी मानते हैं कि, रानी ने बोलने के लिए नहीं किन्तु दुर्गन्ध की रक्षा के लिए मुंह बान्धने को कहा था। और दुर्गन्ध का बचाव नाक बाधने से ही हो सकता है। ऐसी दशा में रानी ने नाक न कह कर प्रचलित शब्दों का प्रयोग

किया अर्थात मुह वांधने के लिए कह दिया तो क्या इस से यह सिद्ध होजाएगा, कि मुंह पर मुखवास्त्रिका वंधाई थी कभी नहीं ! त्रिकाल में भी नहीं ??

भाइयों ? ऐसी रेत की दीवार से दुर्ग खड़ा नही किया जासकता। आपकी यह आशा दुराशा मात्र है और इस में आप को कभी सफलता नहीं मिल सकती। नाक वंध करने के स्थान पर प्राय. मुंह वांधने के लिए कह देने की आदत लोगों की आधुनिक काल से जारी हो गई हो सो बात नहीं है, प्राचीन शास्त्रों में भी इस का प्रमाण मिलता है देखिये ज्ञात सूत्र के नव में अध्याय में कहा है.

"तएणं ते मागंदिया दारए तेणं अशुभेणं गंधेणं अभिभूया समाणं सएहिं उत्तरज्जेहिं आसायं पेहेई" अर्थात उस मागंदिक गाथापति के पुत्र ने उस असाधारण एवम् तीव्र गन्ध से आकुल होकर (आसायं) मुखको ढांक दिया। इस स्थान पर आप शब्दार्थ पर उतर पड़ें तो असंगति के दोषी हुए विना नहीं रहेंगे क्योंकि सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी यह समझ सकता है कि, दुर्गन्ध की रक्षा नाक द्वारा हो सकती है न कि मुख द्वारा। आपके प्रमाण भूत उपरोक्त सूत्र के मुख वांधने के वाक्य का अर्थ भी अवतो आप समझ ही गए होंगे॥

पाठको ? जिन्हें सत्य और न्याय का पक्ष है और शास्त्र वेत्ता हैं वे तो अब मान ही लेंगे कि, मुखवस्त्रिका को मुख पर ही बांधना चाहिए। और जो दुराग्रही और व्यर्थ के हठी हैं उनको तो कष्ट देने की हमारी भी इच्छा नहीं है। वे तो अपनी अपनी डफली और अपना अपना राग अलापा करें। इस विश्राम मे मैंने सन्दिग्ध मार्गीय भाइयों के प्रमाण का पूर्ण रूप

से खण्डन करके दलीलों आदि द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि, मुखवस्त्रिका हाथ में नहीं रक्खी जावे मुख पर बांधी जावे। अब मैं आगे के विश्रामो में इस के शास्त्रीय प्रमाण देता हूँ।

मुख वस्त्रिका मुख पर ही बांधी जाती है, इसके प्रमाण

युक्तियों और दलीलों द्वारा तो मुखवस्त्रिका को मुखपर बान्धना साबित ही है परंतु शास्त्रीय प्रमाणों से भी इसे प्रमाणित करना आवश्यक है। अतः इस के प्रमाण दिए जाते हैं।

मन्दिर मार्गियो के ग्रन्थ क्या कह रहे हैं

मन्दिरमार्गियों का परम माननीय 'महानिशीथ' नामक सूत्र के सातवें अध्याय में लिखा है

" कन्नो ठियाएवा, मुहणं तगेण वा ॥
विणा इरियं पडिक्कम्मे, मिछुक्कड पुरिमड्ढं वा ॥ "

अस्यटीका—कर्णस्थितया मुखपातिकया इति विशेष्यं मुखान्तकेन वा विना इर्य्या प्रतिक्रामेत् मिथ्यादुष्कृतं पुरिमर्द्धं वा प्रायश्चितम्।

अर्थात् (मुहणंतगेणवा) मुखवस्त्रिका [कन्नेठियाएवा] कानों में बाधे (विणा) विना (इरियं) मार्ग में गमनागमन का विचार (पडिक्कम्मे) करे तो उस को (मिछुक्कड) मिथ्यादुष्कृत का दण्ड [वा] अथवा [पुरिमड्ढं] दो प्रहर पर्यन्त भूखा रहने का दण्ड अङ्गीकृत करना चाहिए -

पाठक ! कितनी कठोर आज्ञा है। मुखवस्त्रिका मुख पर बांधे विना कोई एक पद भी नहीं चल सकता। और यदि चले तो कड़ी सजा। आश्चर्य है कि, ऐसे स्पष्ट और वज्र गभीर शब्दों को सुनने में बधिर होकर एक ओर हट जाते

है। और व्यर्थ के वाद विवाद में धर्म का खून कर रहे हैं क्या यह अच्छे विचारों का सुबूत है! और एक ही सूत्र में ऐसा लिखा हो सो बात नहीं है। और भी कई सूत्रों में इस के प्रमाण विद्यमान हैं। सामायिक सूत्र में लिखा है

मुहणंतगेण कणोट्ठियाए, विणा वंधइ जे कोवि सावए धम्मकिरियायं करंति तस्स एका रस्स सामाइयस्सणं पाय च्छितं भवति। अर्थात् यदि कोई श्रावक मुखवस्त्रिका को कानों में बांधे विना ही धर्म्म क्रिया करेतो उसके प्रायश्चित में उसको ११ (एकादश) सामाई [सामायिक] करना पड़ता है। अतः श्रावकों को धर्मक्रिया करते समय मुखवस्त्रिका मुख पर अवश्य बांधनी चाहिए। अब देखिएगा! जब श्रावकों के लिए ऐसी धर्म्माज्ञा है तो साधु उससे विमुख कैसे रह सकते हैं। बल्कि गार्हस्थ्य जीवन में तो धर्म्म क्रिया का समय नियत है और इसीलिए श्रावकों को धर्म क्रिया के समय ही मुखवस्त्रिका बांधने का आदेश किया है। परन्तु साधु जीवन में तो हर समय धर्म क्रिया में प्रवृत्त रहना पड़ता है। और ऐसी दशा में मुखवस्त्रिका साधुओं को हर समय बांधनी चाहिए। परंतु मन्दिर मार्गी साधु महात्मा हर समय तो दूर किसी भी समय नहीं—बांधते है तो क्या उनको यही उचित है कदापि नहीं! त्रिकाल में भी नहीं ??

मन्दिर मार्गीय भाइयों का यह भी कथन है कि, मुखवस्त्रिका जीव हिंसा निवृत्यर्थ नहीं है पुस्तक पर थूक न गिर जाय इसलिए पुस्तकावलोकन के समय मुख के आड़ी रख लेना चाहिए। सो उनका यह कहना असत्य है। मुखवस्त्रिका जीव हिंसा निवृत्यर्थ है इस का प्रमाण भी चाहिए अन

चित्र परिचयके लिये, वन्दनेके लिये नही।



गजसुखमाल मुनिके सिरपर सोमळ ससुर मिट्टीकी पाळ बाध कर
जाज्वल्यमान अगारे कुढ रहा है।

प्रमाण देता हू और वह भी मन्दिर मार्गी भाईयों के ग्रन्थ में से ही। देखिए! इन के 'ओघ निर्युक्ति' नामक ग्रन्थ की १६६-६४ वीं चूर्णी की गाथा में लिखा है।

संपाइम रयणु, परमभण ठावयंति मुहपोतिं।

नासं मुहं च बन्धइ, तीएव सहि पमज्झन्तो॥

अर्थात् खुले मुंह बोलने से जीवों की हिंसा होती है अतः मुखवस्त्रिका को मुखपर बांधना चाहिए। इस ही प्रकार "श्रीप्रकरणरत्नाकर" के अन्तर्गत मन्दिर मार्गियों के आचार्य्य श्रीनेमिचन्द्र सूरि ने अपनी "प्रवचनसारोद्धार" नामक रचना में मुखवस्त्रिका को जीव हिंसा निवृत्ति के लिए मुखपर बाधने का आदेश किया है, जो उक्तरचना के पृष्ठ १४१ पर अङ्कित है। क्या अब भी किसी को यह शंका हो सकती है कि, मुखवस्त्रिका वाष्प द्वारा मरजाने वाले जीवों पर दया करने का साधन नहीं है? पुस्तक पर गिरने वाले थूक कण की रोक का कपड़ा है? हर्गिज नहीं! मुखवस्त्रिका को मुख पर ही बांधना चाहिए इसके और भी प्रमाण देता हू। देखिए! मन्दिर मार्गी साम्प्रदायिक पूर्वाचार्य श्रीमद् चिदानंद महाराज रचित "स्याद्वादानुभवरत्नाकर" ग्रन्थ के ५४ वें पृष्ठ पर ३२ वीं पंक्ति में उल्लेख है कि 'कान में मुंहपत्ति गिराकर व्याख्यान नहीं देना यह कहना ठीक नहीं, क्योंकि आचार्यों ने परम्परा से कान में गिराकर व्याख्यान देने का ही उपदेश किया है" और उस ही ग्रन्थ में उन आचार्य ने आगे चलकर पुनः लिखा है "कान में मुहपत्ति बांध कर व्याख्यान देना चाहिए' विचार शील पाठक! इससे बढ़कर और क्या प्रमाण हो सकते हैं और मुखवस्त्रिका मुख पर बांधने में अब कोई क्या सन्देह कर सकता है, आप ही कहिये?

उपरोक्त प्रमाणों ही से इस विवादग्रस्त प्रश्न को छोड़ नहीं रहा हूं। और भी कई प्रमाण हैं उन सबको उद्धृत किये विना पाठको और (यदि न्याय दृष्टि से मानेंगे तो) मन्दिर मार्गी भाईयों को सन्तोष नहीं होगा । देखिये ! दीक्षाकुमारी द्वितीय भाग पृष्ठ २७४ पर अङ्कित है।

" तमे तप गच्छ ना साधु छो। अने मूर्ति ने माननारा छो। तो पण तमारा क्रिया मार्ग नी अन्दर अनेक जात नी सामाचारी प्रवर्ते छे । कोई मुखे मुखवस्त्रिका वांधेछे, अने कोई नथी वांधता " इस से भी यह सिद्ध है कि खास मन्दिर मार्गियों में भी वहुतों में मुखवस्त्रिका मुख पर वांधने का प्रचार है, और वहुतों में नहीं।

और पहले मूर्ति पूजक साधु और गृहस्थ सव ही मुखवस्त्रिका को मुखपर वांधते थे इसके वहुत से प्रमाण खरतर गच्छ में मिलते हैं। कृपाचन्द्र सूरि व्याख्यान देते समय मुख पर मुखवस्त्रिका वांधते हैं । और पतासीनी पोल दोसी वाड़ा अहमदावाद, डेलानी संप्रदाय के धर्म विजयजी पण्यास, माणिविजयजी दादाजी की संप्रदाय के यद्धा सिद्धिविजयजी आचार्य और मेघविजयजी पण्यास आदि संवेगी साधु व्याख्यान देते समय अव भी मुखवस्त्रिका वांधते हैं। यदि मुखवस्त्रिका मुख पर नहीं वाधी जाती तो खास मन्दिर मार्गियों में ऐसा प्रचार कैसे हो सकता था?

मन्दिर मार्गियों में जिनको दया की कुछ कीमत मालूम है वे अव भी मुखवस्त्रिका को मुंह पर वांधना नहीं छोड़ते हैं। और जिनको अपने वेष विन्यास का ध्यान है और शान

और सौन्दर्य के उपासक है वे दया की परवाह नहीं करते और अपनी जिद्से मुखवस्त्रिका को हाथ में रखते है। परन्तु मुखवस्त्रिका को हाथ में रखने के लिए उनके पास अब कोई जवाब नहीं है।

उनके अर्थात् मन्दिर मार्गियों के कई आचार्यों ने भी सूत्रों आदिका ही अनुकरण करके पीछे से जो ग्रन्थ निर्माण किए हैं, उनमें भी मुखवस्त्रिका को मुखपर बांधे रहने का आदेश किया है। जैसा कि, देवसूरि, आचार्य्य ने स्वरचित समाचारी ग्रन्थ में लिखा है " मुखवस्त्रिकां प्रति लेख्य मुखे बध्वा प्रति लेखयति रजोहरणम् " अर्थात् मुखवस्त्रिका का प्रतिलेखण करके मुखवस्त्रिका को मुख पर बांध कर रजोहरण की प्रतिलेखणा करना चाहिए।

और इन्हीं के पूर्वाचार्य उद्योतसागरजी ने अपनी रचना " श्रीसम्यकत्व मूल वार व्रतनी टीप " के पृष्ठ १२१ पर यों लिखा है कि, " तीजो चल दृष्टि दोष ते सामीयक लईने पछी दृष्टि ने नाशिका ऊपर राखे अने मन मा शुद्ध श्रुतोप योग राखे, मौन पणे ध्यान करे तथा जे सामायिक वंत ने शास्त्र अभ्यास करवो होय तो जयणा युक्त थई मुंहपत्ति मुखे बांधी ने पुस्तक ऊपर दृष्टि राखीने भणे तथा सांभले "

पाठक महाशय! इसमें श्रावकों को मुखवस्त्रिका मुखपर बांधने की आज्ञा दी है, जैसा कि, पहले भी एक उदाहरण में आचुका है। इसको सब कोई समझ सकते हैं कि, एक धर्म गुरु जिस बात का अपने श्रावकों को उपदेश करे उसका आचरण स्वयम् आचार्य होकर नहीं करे यह कैसे

मुनि लब्धि विजयजी महाराज ने अपनी बनाई हुई "हरिवल मच्छी के रास" नामक पुस्तक की सत्ताईस वीं ढाल के दोहे में इस प्रकार कहा है—

"सुलभ बोधी जीवड़ा, मांडे निज खटकर्म ।
साधु जन मुख मुँहपत्ति, बांधी है जिन धर्म ॥

इस दोहे में कितने खुले शब्दो में मुँहपर मुखवस्त्रिका बांधने का कथन किया है? क्या अब भी किसी को कोई शंका हो सकती है कि मन्दिर मार्गी मुखवस्त्रिका को मुंहपर बांधने का समर्थन नहीं करते? कभी नहीं। यही क्यों और भी बहुत से प्रमाण है। देखिएगा! श्री हेमचन्द्राचार्यजी के रचनानुसार उदयरत्नजी ने अपने भाषा काव्य में ६६ वीं ढाल की चौथी गाथा में कहा है:—

" मुँहपत्तिए मुखवांधीरे, तुम वेशो छो जेम गुरुणी जी
तिमसुखड्डुबाईनेरे, विसाएकेम गुरुणीजी
साधु विन संसार मेरे, क्यारे को दीठा क्या गुरुणीजी"

यदि पहले मन्दिरमार्गियों में मुखवस्त्रिका मुखपर बांधने की चाल न होती तो इस प्राचीन रचना में " मुखपत्तिए मुखवांधीरे ' का वर्णन नहीं होता। वल्कि इसके स्थान में " मुँहपत्तिए हाथ राखीरे" का वर्णन किया जाता। और भी सामाचार्य के शिष्य विनयचन्द्रजी ने निजकृत "सुभद्रासती के पंच ढालिया नाम्नी पुस्तिका मे इस प्रकार कहा है—

" तू जैन यति गुरु माने छे, तूं तप करे बहु छाने छे।
रहता मे ले वाने छे ॥ २ ॥सु.
ते भिख्या ले घर अण जाणजी, नित पीता धोवण पाणी।

तूं श्रावका हुई सुणवाणी ॥ ३ ॥ सु.
तूं धर्म कारण मुँह बांधेछे पिण नयणां नयण तूं सांधेछे ।
तू नचीती पति के खांधे छे ॥ ४ ॥ सु. "

और कवि पुण्य विलास यतीजी ने " मानतुङ्ग मानवती" का रास बनाया उसकी ४८ वीं ढाल के ऊपर दोहे में कहा है—

" केइ भणे केइ अर्थ ले, केवांचे सूत्र सिद्धान्त ।
मुँहडे बांधी मुहपत्ती, मोटा साधु महन्त

यह तो हुई मन्दिरमार्गियों के धर्म गुरुओं के मत की बात अब इस ही संप्रदाय के श्रावकों की कथा भी सुन लीजिए

मुखवस्त्रिका पर मन्दिरमार्गी श्रावकों की सम्मतिएँ

मन्दिरमार्गी बान्धवों ! मुखवस्त्रिका को मुखपर बांधने के सम्बन्ध में हमने आपके माननीय सूत्रों, आर्षग्रन्थों, और धर्म गुरुओं की वाणी को ही हाथ में रख कर सच्ची सच्ची विवेचना की है । और वह इसलिए कि, आपको जब अपने ही ग्रन्थ हमारी दलीलों को सच्ची बतारहे हैं तो ऐसी दशा में मुखवस्त्रिका को मुखपर बांधने को मानने में आपको सन्देह ही क्या हो सकता है ! कुछ नहीं ! अब मैं आप को यह बताने के लिये तैयार हूं कि, आपके श्रावक इस विषय में क्या कहते हैं ! देखिये ! ऋषभदासजी ने स्वनिर्मित ग्रन्थ " हित शिक्षानो रास " में इस प्रकार कहा है:—

" मोन करी मुख बांधिए आठ पड मुखकोशोरे "

उन्ही महाशय ने उक्त ग्रन्थ की द्वितीयावृत्ति में पुनः यों कहा है:—

" मुखे बांधी ते मुहपति, हेटे पाटो धारि।
अति हेठी डाढ़ी थई; जोतर गले निवारी ॥ ३ ॥
एक काने धज सम कही, खंमे पछेड़ी ठाम।
केड़ी खोशी कोथली, नावे पुण्य ने काम ॥ ४ ॥

अर्थात् मुखवस्त्रिका तो वही है जो मुंहपर बांधी जाय। यदि वह मुख के नीचे रहे तो पाटे के समान होजाती है और ज्यादह नीची लटकी रहे तो दाढी की समता करने लगजाती है। और गले में होतो 'जोत' सी दिखाई देती है। एक कान में लटकावें तो वह ध्वजा के सदृश होजाती है। कंधे पर रक्खी जाय तो वह पछेवड़ी सी दिखाई देगी। और यदि कमर में खोंसी जायगी तो कोथली कहलाएगी और इस तरह अन्य स्थानों में रखने से अर्थात् मुंहपर न बांधने से उसका पुण्य भी नहीं होगा।

अब हम अन्य मतावलम्बियों के ग्रन्थों के प्रमाण देकर भी इसकी सत्यता बताना चाहते हैं।

अन्यमतावलम्बियों के धर्मग्रन्थों से भीप्रमाण

ऊपर हम जैन ग्रन्थों के अनेक प्रमाण देकर पाठकों का संदेह दूर कर चुके हैं। परन्तु अब हम अन्य धर्मावलम्बियों के ग्रन्थों से भी प्रमाण उध्दृत करते हैं। जो विषय सर्व साधारण पर विदित होता है उसका उल्लेख अन्य धर्म्मों के ग्रन्थों में भी पाया जाता है, यही बात मुखवस्त्रिका के सम्बन्ध में भी है अर्थात् जैन श्वेताम्बर मुखवस्त्रिका मुंहपर बांधते हैं इसको सर्व धर्मावलम्बी जानते हैं।

चित्र परिचयके लिये, वन्दनेके लिये नही।



प्रसन्नचद्र राजऋपिको राजसम्बन्धी सन्देश।

वैष्णवों के धर्म ग्रन्थों के प्रमाण

शिवपुराण के इक्कीसवें अध्याय के पच्चीसवें श्लोक में जैन-साधुओं का वर्णन इस प्रकार किया है ।

" हस्ते पात्रं दधानश्च, तुण्डे वस्त्रस्य धारकाः ।
मलिनान्येव वासांसि, धारयन्तो ऽल्प भाषिणः ॥ २५ ॥

अर्थात् जैन-साधु हाथों में पात्र और मुखपर वस्त्र धारण करनेवाले, मलीन वस्त्रवाले और अल्प भाषी होते हैं । और भी देखिए ! श्रीमाल पुराण के तहत्तर वें अध्याय का ३३ वां श्लोक इस प्रकार है ।

" मुखे दधानो मुखपत्तिं, बिभ्राणो दण्डकं करे ।
शिरसो मुण्डनं कृत्वा, कुक्षौ च कुंजिकां दधत् ॥ ३३ ॥

अर्थात् जैन मुनि मुखपर मुखवस्त्रिका बांधने वाले, वृद्धावस्था होने से दण्ड धारण करनेवाले और शिर मुंडाकर कांख में ओघा (जीवों की रक्षा के लिये एक ऊन का गुच्छा) रखने वाले होते हैं । इस के अतिरिक्त मुख पर मुखवस्त्रिका बांधने का प्रमाण 'अवतार चित्र' में इस प्रकार लिखा है :-

छन्द पद्धरी

नित कथा यज्ञ घातक निदान,
धरि नयन मूंदि अरिहंत ध्यान ।
सब श्रावक पोषादि वश साधि,
मुखपाटि रुद्ध अरंभ उपाधि ॥

अर्थात् जैन मुनि प्रतिदिन कथा करनेवाले, पशुयज्ञों का

निषेध करनेवाले, नेत्र बन्द कर अरिहंत का ध्यान करनेवाले सब श्रावकों को पोषादि व्रत करानेवाले, मुखवस्त्रिका से मुँह बांधनेवाले और पचन पाचन अग्नि आदि आरंभ से अलग रहनेवाले होते हैं।

जो बात शास्त्र सम्मत है और प्राचीन काल से प्रचलित है उसका वर्णन तो केवल जैन शास्त्रों में ही क्या किन्तु अन्य धर्मों के ग्रन्थों मे भी विशद रूप से मिलता है। पाठक! अब तो आप जान ही गए हैं कि, वैष्णवों के ग्रन्थ भी मुखवस्त्रिका मुँहपर बांधने की शहादत दे रहे हैं। इस से बढकर हमारी सत्यता का उदाहरण और क्या हो सकता है? आप ही कहिए?

भिन्न २ मतावलम्बी यूरोपियन सज्जनों की साक्षी

अब हम विदेशी विद्वानों एवम् भिन्न भिन्न मतावलम्बियों की राय इस विषय में क्या है, यह प्रगट करना चाहते हैं "दुनिया के धर्म" नामक पुस्तक में जॉन मेडिक एल एल डी की सम्मति पृष्ठ १२८ पर उध्दृत है कि, "यति" लोग अपनी ज़िन्दगी को निहायत मुस्तकिल मिजाज़ी से बसर करते हैं। और वे अपने मुँह पर एक कपड़ा बांधे रखते हैं जो कि छोटे २ कीड़े वगैर. को अन्दर जाने से रोक देता है'।

फिर भी देखिये! "एन्साइक्लोपीडिया" नामक छोटी पुस्तक के २६८ वें पृष्ठ पर इस प्रकार लिखा है—" यति लोग अपनी जिन्दगी निहायत सब्र और इस्तकलाल के साथ बसर करते हैं। और एक पतला कपड़ा मुंहपर बांधे रखते हैं और एकान्त में बैठे रहते हैं"।

इस ही प्रकार मिस्टर ए, एफ रुडलाफ होर्नेले पी एच डी ने भी उपासक दशाङ्ग सूत्र का अनुवाद अंग्रेजी में किया है, उस पुस्तक के पृष्ट ५१ पर १४४ वें नम्बर के नोट में उध्दृत है'—"मुखप ति, जिसको संस्कृत में मुखपत्री कहते है अर्थात् मुख का ढक्कन। जिससे, सूक्ष्म जीव उड़ने वाले मुख के अन्दर प्रवेश न कर सकें इस लिये छोटासा कपड़ा मुख पर वाधेते हैं, उसे मुखपति कहते हैं"

उपरोक्त प्रमाण कितने जबरदस्त हैं क्योंकि प्रथम तो उनके लेखक विदेशीय विद्वान हैं जिनको किसी का पक्ष नहीं दूसरा उन्होंने मन्दिर मार्गियों के यतियों (साधुओं) के लिये ही लिखा है। कहिये पाठक? अब भी क्या मन्दिरमार्गी साधु एवम् श्रावक मुखवस्त्रिका को मुँहपर वाधने से इनकार कर सकते है? कभी नहीं!

फिर देखिए! "भारत वर्ष का इतिहास" तीसरे और चौथे स्टैण्डर्ड के लिये। जिसके पृष्ट २६—२७ पर इस प्रकार का उल्लेख है:—

जैन मत और महावीर की कथा

जैन मत जैनी के तीन रत्न और तीन अनमोल शिक्षा है। अर्थात् सम्यग् दर्शन सम्यग् ज्ञान और सम्यग् चरित्र! तीसरे रत्न में बुद्ध के पांच नियम है! १ झूठ नहीं बोलना २ चोरी नहीं करना ३ विषय वासना नहीं रखना ४ शुद्ध रहना ५ मन वचन और कर्म में स्थिर रहना ६ जीव हिंसा नहीं करना! पिछले नियमों को जैनी साधु बड़े यत्न से मानते है! कहीं छोटे से छोटे कीडों को भी वे दुख न दें या मार न डालें इसलिए वे पानी को छान के पीते हैं! और चलते समय

झाड बुहार के आगे पॉव धरते हैं। कही सांस लेने में कोई कीट पतंग मुँह में न चला जावे इसलिए वे अपने मुँहको कपड़े से ढांके रहते हैं" शास्त्रीय एवम् अनेक ग्रन्थों के प्रमाण देने में हमने कोइ बात उठा नहीं रखी परन्तु अब हम प्राचीन चित्रों के जो ब्लाक चित्र तैयार कराए हैं वे पाठकों के आगे रखना चाहते हैं।

चित्रो द्वारा प्रमाण

पाठकों को यह बतलाने की कोई आवश्यकता नहीं है कि, संसार में चित्र कितने मूल्य की वस्तु है। पुरातत्व वेत्ता ओं को चित्रों एवम् शिलालेखों ने ही प्राचीन इतिहास का विशेष पता दिया है। इतिहास को अंधकार से प्रकाश मे लाने के लिए चित्रों ने जितनी मदद की है उतनी किसीने नहीं। यदि प्राचीन चित्र उपलब्ध न हुए होते तो यह पता कहां से चलता, कि, किस समय कैसा वेष था और किस धर्म के लोग किस तरह का पहनाव रखेत थे। और यह चित्र किस समय का है इत्यादि।

हमारे कथन का यह भाव है कि, चित्र सामाजिक परिस्थिति के अनुकूल बनते है। अर्थात् जिस समय जैसी वेष भूषा समाज में होती है उसके अनुकूल ही चित्र बनते है। और इसीलिए समय और इतिहास की खोज में लोग चित्रों को बहुत प्रमाणिक मानते है।

हम भी मन्दिर मार्गीय साधु एवम् श्रावकों और अन्य पाठकों के सम्मुख आज वैसे ही प्राचीन चित्र रखरहे है जो

मुखवस्त्रिका को मुख पर बांधने का प्रमाण देंगे। यदि पूर्व काल में मुखवस्त्रिका मुखपर न बांधी जाती तो ऐसे चित्र कैसे तैयार हो सकते थे? और इस का मन्दिर मार्गियों के पास क्या जवाब है? वे इन चित्रों को झूठ प्रमाणित नहीं कर सकते।

वाचक वर्ग! चित्र नम्बर १ को देखिए! यह चित्र सन् १९११ की अप्रेल मास की 'सरस्वती' के पृष्ठ २०४ के चित्र का ब्लाक तैयार होकर छपा है। यह चित्र सप्तदश आचार्यों* का है। इसमें का बारहवां चित्र आदिनाथ अर्थात् भगवान् ऋषभदेव का है जिनके मुखारविन्द पर मुखवस्त्रिका बंधी हुई है। कई चित्र, चरित्र और कथा के आधार पर चरित्र नायक के देहावसान के पीछे भी तैयार होते हैं इसको हम मानते हैं। परन्तु चित्रकार लोग चित्र प्राचीन ग्रन्थों में जैसा वर्णन मिलता है उसी के अनुसार बनाते हैं। उसमें आकृति भले ही ठीक नहीं मिलती हो परन्तु वेष-विन्यास में कुछ फर्क नहीं रहता है। इसही प्रकार उपरोक्त चित्र भी काल्पनिक है परन्तु हमारा अभिप्राय केवल इतना ही है, कि पहले मुखवस्त्रिका मुंहपर साधु सन्त बांधते थे तभी तो इस चित्रकारने भी मुंह पर मुखवस्त्रिका बंधे हुए चित्र का दृश्य दिखलाया। मुखवस्त्रिका मुंहपर

---

* आदिनाथ भगवान् को ऊपर हमने अपनी ओर से आचार्य नहीं लिखे हैं। यह भूल तो 'सरस्वती' सम्पादक की है। हमने तो चित्र जिस नाम से छपा उसको उसीके अनुसार केवल मुखवस्त्रिका के प्रमाणार्थ लिखा है।

एक और उदाहरण लीजिये ! चित्रशाला प्रेस पूना से प्रकाशित होनेवाली "सचित्र अक्षर लिपि" नाम्नी पुस्तक में जो यति का चित्र दिया है वह भी प्राचीन आदर्श के अनुसार बना है, अर्थात् यति के मुंह पर मुखवस्त्रिका बंधी हुई है देखिए ब्लाक चित्र नम्बर ७ ।

कहिए पाठक ! क्या अब भी किसी प्रमाण की आवश्यकता है ! हर प्रकार से हम यह साबित कर चुके हैं, कि मुखवस्त्रिका मुंख पर बांधने ही की वस्तु है हाथ में रखने की नहीं। और साथ ही हम यह भी समझा चुके हैं, कि इसको हाथ में रखने से कोई लाभ नहीं। अब हम आगे मुखवस्त्रिका को मुखपर बांधने में स्वास्थ्य की दृष्टि से क्या २ लाभ हैं यह बतलायंगे ।

स्वास्थ्य की दृष्टि से भी लाभ

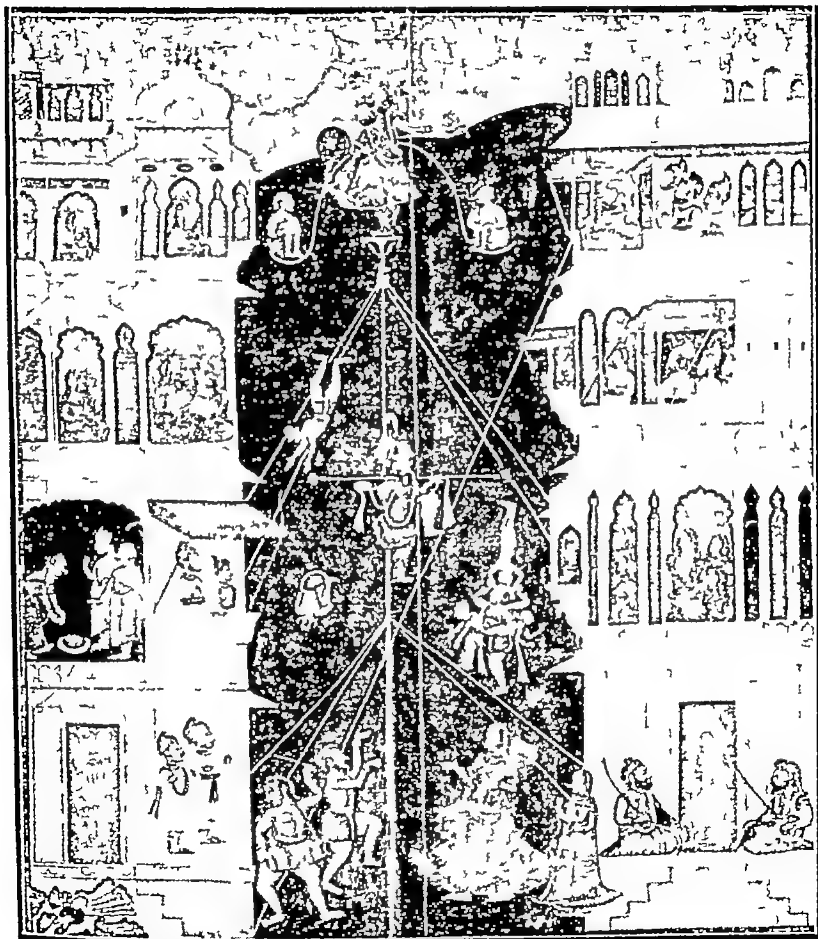
मुखवस्त्रिका का उद्देश्य प्राणियों की रक्षा का तो है ही परन्तु इससे स्वास्थ्य-दृष्टि से भी बहुत लाभ हैं। अर्थात् इसके मुखपर बंधी रहने से जो मनुष्य मुख के द्वारा भी श्वास लेते हैं वे अनेक भयानक रोगों से बचजाते हैं जिन के प्रमाणार्थ नीचे कई डाक्टरों की राय उध्दृत करते हैं।

Doctor James Cout Ph. D., F. A. S. writes.

" By an effort of the Will in the one direction exercised in the private and in public, Keep the mouth shut and breathe through the rose.

बृहद्-मुखवस्त्रिका निर्णय —

चित्र परिचयके लिये, बन्दनेके लिये नहीं।



नाटक करतेहुवे इलायची कुंवर शान्त स्वभावी मुनिश्रीको देख वैराग्य प्राप्त हुवे।

Lakshmi Art Bombay 8

" There is nothing very occult or mysterious about this direction. In fact, it is very prosaic and common-place. But if you want to ward off disease, increase your vital and virile energies, increase the purity of your blood, stimulate as well as perfect the heart's action, and supply the brain and the sensory, motor, and vegetative or sympathetic nervous systems with the materials necessary to do their work "Keep the mouth shut" and breathe through the nose That conduces to health, " self control," and well-being.. ...And last, though not least, the " Will to do and dare and the grit to accomplish things is perfected thereby "... ..Suffice it to say, you will notice that all really strong and able men, men of force, firmness, strength of will, and dominating their fellows, and who, within historic times, and within your our experience, made their mark in science, Politics, religions, the army or commerce, have been and are " Physically and mentally too"-men who have " Kept the mouth shut" ......Keep your mouth shut, and only open it when you want to clean your teeth, partake of food or to speak, and then only when you have thought over

and the motive what you are to say No more "implusive spurts," no words of anger or impatience, and wounded self conceit. The open mouthed may have many good qualities yet they have no "tenacity and staying Power"... . The lack of success is due to want of one of the first essentials of self control, "reserve" the silent tongue physiognomically indicated by the shut mouth

"Now if the vital powers are improved, health maintained and conserved, disease resisted, life made more enjoyable and prolonged, by the simple expedient of keeping the "mouth shut," is it not well worth trial? If you add to this that the practice conduces to Firmness, Decision, Perseverance, Fortitude, Concentration, and strength of will, the "exercise" becomes a delightful and pleasant 'necessity'. At once commence the practice, then by perseverance and constant watchfulness it will become 'second nature' automatic and will be carried out without the conscious supervision of the ordinary every day mind.'

उक्त इङ्गलिश का हिन्दी अनुवाद

डाक्टर जेम्स स्काट साहब फरमाते हैं "सूरत या ज़मीर या चैतन्य को एकस्थित करने के लिए मुंह को बन्द कर नाक द्वारा सांस लेना यह पहला नियम है। इस नियम में कोई छिपा हुआ भेद नहीं है। वास्तव में यह कोई कठिन बात भी नहीं है। यदि आप चाहते हों कि हम स्वस्थ हो जायं, हमारी मास्तिष्क-शक्ति बहुत अधिक बढ़जाय, (आंतरिक और बाह्य दोनों ही) शरीर में पवित्र साफ खून पैदा हो, चित्त में स्थैर्यता उत्पन्न हो, मस्तिष्क की चैतन्यता और विचार शक्ति की स्थिरता, शरीर की सम्पूर्ण अस्थियों और जालों की मजबूती इत्यादि बातें चाहते हों तो आप श्वास नाक के द्वारा लेने का नियम स्वीकार करें। यह नियम तन्दुरस्ती और इस्तकलाल को ताकत देता है, और बढ़ादेता है। यह चित्त की स्थिरता में भंग डालने वाले नियमों को-विचारों को कूड़ा करकट की भांति नीचे बिठा देता है।

आप जानते होंगे कि जितने उच्च मास्तिष्क, बलवान या संतोषी और अपनी बात के धनी ऐतिहासिक समय में मेरे और आपके अनुभव से विद्वान, राजनीतिक धार्मिक शूर-वीर और व्यापारी हुए हैं। और उन्नत बने हैं। वे केवल संतोष से खामोशी अख्तियार करने से। मुंह को हमेशा बन्द रखो। सिर्फ उस वक़्त खोलो जबकि तुम्हें खाना खाना हो या दांतों को साफ करना हो अथवा किसीसे बात चीत करनी हो। उस वक़्त मत खोलो जब कि तुम्हारे मुंह से कोई बात ऐसी

निकलने को हो जिससे कि हृदय धड़कने लगे । और तबियत पर रंज आय । मुंह को खुला रखने में कई सूरतें बहतरी की हैं, लेकिन वह कायमुल मिजाजी करार दिल में हो तो कामयाबी (सफलता) की पहली सीढ़ी दिल के करार के साथ जबान रोकना या खामोशी है।

वैद्यक विधान से भी मुंह को बन्द करना चाहिए। मुंह के बन्द करने से दिमाग में रोशनी और शारीरिक तंदुरस्ती बढ़ जाती है। ज़िन्दगी आराम से गुजरने लगती है। यदि आप इन सब बातों से भी अधिक लाभ चाहते हों तो विश्वास बल अर्थात् खयाल का जमाना संतोष और इस्तकलाल दिलेरी और दिल को कायम रखने को हाथ से न छोड़ें। जब आपको इस ताकत के बढ़ाने में कुछ मजा और खुशी हासिल होने लगेगी तो सूरत या इन्सान का बोलना इस नाम को छोड़ कर दूसरे नामसे मोसूम हो सकता है यानी कहलाई जा सकती है। अर्थात् परमात्मा से मिल जाना या परमात्मा कहलाना।

पुनः अन्य अंग्रेज विद्वानों की सम्मतियें पढ़िये.

The religions of the world by John Murdock. L. L. D. 1902 page 128 —

" The yati has to lead a life of continence, he should wear a thin cloth over his mouth to prevent insects from flying into it "

Chamber's Encyclopaedia Volume VI London 1906, Page 268 :—

" The yati to lead the life of abstinence and continence, he should wear a thin cloth over his mouth . Sit "

Mr. A F Rudolf Hoernle Ph D Tubingen, in his English translation of Upasagadasang, Vol. II Page 51, Note No 144, writes

" Text muhapatti, Skr. mukha Patri. 'lit, a leaf for the mouth,' a small piece of cloth, suspended over the mouth to protect it against the entrance of any living thing

A light of Jain principles to the public health.

The principle of applying *Muhapatti* i e the covering over the mouth, is to protect the living germs that are present in the atmosphere, but as regards the medical point of view the covering over the mouth is also to protect ourselves from many diseases which are due to impurities of air –

१ *Effects of dust and solid impurities* –

Dust consists principally of mineral particles of formed or unformed organic matter of animal or vegetable origin e g Epithelia, fibres of wool or cotton, or particles of animal or vege-

table tissues The effects depend on the amount inhaled and on the physical conditions of the particles, whether sharp—pointed or rough etc They always injure health and the principal affections arising therefrom are cattarrh, Bronchitis, Fibroid, Pneumonia Asthma and Emphysema The most important symptoms of lung diseases produced by inhalation of dust are Dyspnea and Expetoration.

Effects of suspended impurities —

Workers in rags and wool suffer similarly from dust Dust from fleeces of wool has caused Anthrax Mill—stone cutters, stone—masons, pearl cutters, sand—paper makers, knife—grinders millers, hair—dressers, miners fur-dyers, weavers etc all suffer from diseases of lungs caused by the inhalation of dust and other suspended matters Brass—founders inhale fumes of oxide of zinc and suffer from diarrhea, Cramp etc Match-makers inhale fumes of phosphorus and suffer from necrosis of the lower jaw Besides these, infective matter from diseases like Typhoid fever, Measles, Small—pox, Tuber-

culosis etc are disseminated through the air probably always in the form of dust

3. *Effects of gases and valatile effluvia*

(a) Hydrochloric acid vapour causes irritation of lungs and diseases of eye

(b) Carbon disulphide vapours cause headache, muscular pain and depression of the nervous system

(c) Ammonia causing irritation of conjuntiva

(d) Carburatted Hydrogen causing headache, vomiting, convulsions etc when inhaled in large quantity

(e) Carbon monoxide imparts a cherry red colour to the blood, and by interfering with oxygenation, may cause diarrhea, headache, nausea, muscular and nervous depression.

(f) Effluvia from Brick-fields, effluvia from offensive trade, tanneries fat and tallow factories gut scraping, bone-boiling, paper-making etc Effects of gas from sewers and house—drains are diarrhea, gastro

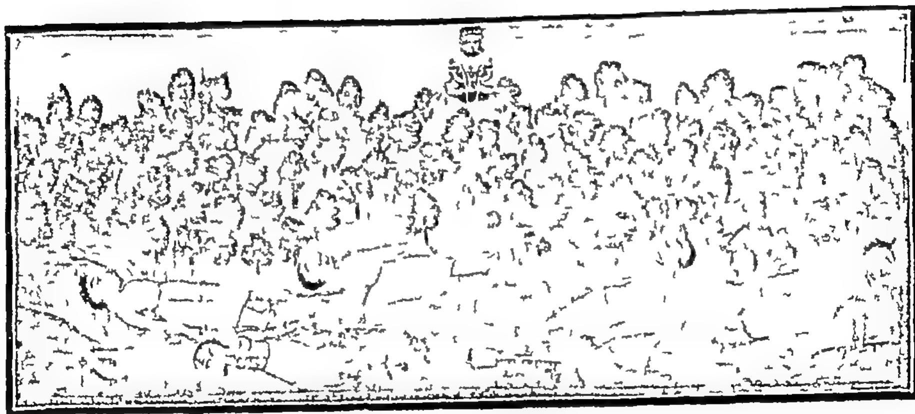
intestinal effects, sure throat, diphtheria, aneamia and constant ill-health. Diseases like cholera, enteric fever erysipelas, measles scarlet fever etc are aggravated by sewer gas.

4 Effects from decomposing organic carcases cause out-breaks of diarrhea and dysentery

Therefore, gentlemen, pure air is absolutely necessary for healthy life, and perfect health can only by maintained, when in addition to other requirements, there is an abundant supply of pure air. Every one is aware that while starvation kills after days, deprivation of air kills in a few minutes, Health and disease are in direct proportion to the purity or otherwise of ill--health being largely due to impurities of the air. Hence to apply Muhpatti over the mouth is taught by three great authorities—Nature, jain principles and medical view

(1) Nature teaches human beings to avoid them selves from the direct attack of diseases i. e. for example, whenever we pass by the side of decomposing carcas, at once our brain

(चित्र परिचय के लिये, वन्दनेके लिये नहीं)



पाचो पाडव शत्रुञ्जय पर्वत पर सथारा किये हुवे हैं।

ders our hand to search out for a hand-kerchief and to apply over the mouth and nose so that bed nuisance may not injure the health

(2) Jain principles teach us to apply MUHAPATTI is already discussed in Shastras

(3) Medical teaches us to avoid from all the diseases which can be acquired from air and dust is already discussed above.

Some of my friends will agree that why MUHAPATTI should not be applied to nose, because nose is an organ of respiration The reply is that nature has furnished the nose with hair which are the guard of foreign-body from the outside

हिन्दी अनुवादः-

जैन सिद्धान्तों की दृष्टि से स्वास्थ रक्षा पर विचार.

मुंह पत्ति धारण करने का (मुंह पर वस्त्र बांधने का) उद्देश यह है कि वायु में जो सजीव प्राणी रहते हैं, उनकी रक्षा हो, और आयुर्वेद की दृष्टि से भी वायु में अनेक खराबियां रहने के कारण जो बीमारियां पैदा होती हैं उन बीमारियों से अपने शरीर की रक्षा इस मुख वस्त्रिका के धारण करने से हो सकती है।

(१) वायु में रहे रज (धूल) तथा दूसरे ठोस परिमाण से हानियांः—

धूल में खनिज पदार्थों के टुकड़े व सजीव तथा नन्न म-

म्बन्धी अनेक पदार्थ रहते हैं यथाः- पफि थेलिया, ऊन या रूई के रेशे व सजीव प्राणियों के निर्जीव शव के टुकड़े व सचित वस्तु के शरीर सम्बन्धी नसें व आंतें या हड्डियों के टुकड़े।

इन सब खराबियों का असर श्वासोच्छ्वास के न्यूनाधिक परिमाण पर व इन वस्तुओं की प्राकृतिक दशा पर निर्भर है। (अर्थात् ये वस्तुएं तीखी नोक वाली हैं, या बोठी नोक वाली इत्यादि)

ये सदा अपने स्वास्थ्य को बिगाड़ देती है.और इनसे मुख्य बीमारियां केटेरा, ब्रोंकाइटिस, फिबरोइड निमोनिया एस्थमा, इम्फिसिमा इत्यादि पैदा होती है।

रेणु मिश्र वायु के सेवन से फेफड़े की बीमारियों के खास चिन्ह डिस्प्निया तथा पिटोरेशन हैं।

२ वायु आश्रित रही हुई अन्य खराबियों का असर-

इसी भांति चिथड़ों मे व ऊन में काम करने वाले रज से हानि उठाते है। ऊन के गुच्छों की धूल से एन्थ्रेक्स पैदा होता है। घट्टी टांचने या सिलावट, मोती काटने वाले या रेजमाल कागज बनाने वाले, चाकू सुधारने वाले, चक्की चलाने वाले, बाल काटने वाले, खान खोदने वाले, ऊन रंगने वाले,कपड़ा बुननेवाले आदि सब रज मिश्रित दूसरे परमाणु युक्त वायु के सेवन से फेफड़े सम्बन्धी अनेक बीमारियों से पीड़ित रहते हैं। उदाहरणार्थः- पीतल बनाने वाले जस्त (/in) आक्साइड (oxide) के कणका श्वास लेते हैं। और उनको डायरिया या क्रम्प (cru mp) हो जाता है। दियासलाई बनाने वाले फास्फरस की चिनगारियों का श्वास लेते हैं. और उनके जबड़ों में नेकरोसीस हो जाता है। इनके सिवाय चेपी रोग भी लागू हो जाते हैं। जैसे टाईफाइड, ज्वर, मसूरिका माता, ट्यूबर केलोसिस इत्यादि जो कि हवामें हमेशा रजरूप में वितरित होते है।

३-हवा में गन्दगी व अन्य मैली हवाओं का असर'-

(अ) हाइड्रो क्लोरिक एसिड की भाप फेफड़ों को बिगाड़ती है, और नेत्रों के रोग पैदा करती है।

(ब) कारबन डायाक्साइड (Dioxide) की भाप मस्तिष्क या नसों में दर्द व रगों में शिथिलता पैदा करती है।

(स, एमोनिया (कंजक्टाइवा) में दुर्विकार उत्पन्न करता है।

(ड) कारब्यूरेटेड हाईड्रोजन मस्तिष्क वमन, पैंठन, इत्यादि(जब ज्यादा परिमाण में सूघ लिया जायतो)पैदा करती है।

(ई) कारबन मोनोक्साइड खून का रग हलका लाल कर देता है, और आक्सीजनेशन के मिलने से डाइरिया, मास्तिष्क नोसिस (उलटी) नसों में तथा रगों में शिथिलता पैदा करता है।

ईंटों के अवाड़े की हवा दुर्गन्ध पदार्थों के व्यापार की हवा चर्बी की फेक्टरियों की हवा, आते साफ करने की हवा, हड्डियों को उबालने की हवा, कागज बनाने की हवा, नालों व गटर की हवा से डायरिया, आंतों में दुर्विकार, कुष्ट रोग, डिप्थोरिया, एनिमिया, और सदा-कुस्वास्थ्य का रहना इत्यादिबीमारियां होती हैं। परनालों की तथा गटर की हवा से हैजा, पार्थिव ज्वर, एरिस,पिलस, मल, लाल बुखार इत्यादि बीमारियां बढ़जाती हैं।

४-प्राणियों के सड़ते हुए शरीरों की हवा से डायरिया या डिसेन्ट्री पैदा हो जाती है।

अतः सज्जन गण! स्वास्थ्य रक्षा के हेतु शुद्ध व स्वच्छ वायु अत्यावश्यक है। स्वास्थ्य अच्छा तब ही रह सकता है, जब अन्य पदार्थों के सिवाय शुद्ध हवा का परिपूर्ण भाग विद्यमान है। यह बात हर एक को विदित है कि यदि भूखों

मरना अपने अन्तिम जीवन को क्षय करना है। परन्तु वायु से वंचित रहना तो थोड़े ही समय में तमाम काम (जीवन) खतम कर देता है।

अच्छा स्वास्थ्य शुद्ध हवा पर उतना ही अधिक निर्भर है, जितनी अधिक गन्दगियों से बीमारियां पैदा होती हैं। अर्थात् जितनी ज्यादह वायु में खराबियां रहती हैं, उतनी अधिक बीमारियां भी पैदा होती हैं। इसलिये मुह पर वस्त्र धारण करना इन तीन सिद्धान्तों से पुष्ट होता है। प्राकृतिक, जैन और वैद्यक।

(१) प्रकृति प्राणी मात्र को बीमारियों से रक्षा करना सिखाती है। जैसे-यदि हम कहीं एक सड़ती हुई लाश के पास से होकर गुजरें तो एक दम अपना दिमाग अपने हाथ को जेबमें से रूमाल निकालने के लिये तथा उसको नाक से आड़ा लगाने के लिये प्रेरित करता है। ताकि दुर्गन्ध हवा स्वास्थ्य को न बिगाड़ दे।

(२) मुंहपत्ति को धारण करने के विषय में जैन शास्त्रों में परिपूर्ण रूप से व्याख्या तथा पुष्टि की गई है।

(३) वैद्यक शास्त्र भी हमको यही सिखाता है कि उपरोक्त वायु के आश्रित रेणु तथा दुर्गन्ध से जो बीमारियां पैदा होती हैं, उनसे अपने आपको बचाओ।

कतिपय मित्र यह तर्क करेंगे कि मुंहपत्ति को नाक पर क्यों नहीं लगाना चाहिये। क्योंकि नाक भी तो वायु सेवन का द्वार है। उत्तर में इतना ही लिखना यथेष्ट है कि प्रकृति ने नाक में बाल रखे हैं। जिनसे बाहरी खराबियां रुक जाती हैं

" दुनियां के धर्म " अर्थात दुनिया की मजहबी किताब जो कि " जॉनमर्डाक एल एल डी १६०२ में लिखित पुस्तक के

१२८ वें पृष्ठ पर लिखते हैं, कि "यति लोग अपनी जिन्दगी को निहायत मुस्तकिल मिजाजी से बसर करते हैं और वह अपने मुह पर एक कपड़ा बाधे रखते हैं, जो कि छोटे २ कीड़े वगैरः को अन्दर जाने से रोक देता है।

पुनः इन्साइक्लो पेडिया पुस्तक नं० ६ पृष्ट नं० २६८ सन् १६०६ में लिखते है कि यति लोग अपनी जिन्दगी निहायत सबर और इस्तकलाल के साथ बसर करते हैं और एक पतला कपड़ा मुह पर बांधे रहते हैं, और एकान्त में बैठे रहते हैं।

इसी प्रकार मिस्टर ए एफ रुडलाफ होर्नले पी एच. डी- स्यु विनजेन ने 'श्री उपासक दशांगजी' सूत्र का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया है, उस पुस्तक के पृष्ट ५२ नोट नम्बर २४४ में वह निम्न लिखित प्रकार से है, पढ़िये।

"मुखपत्ति" जिसको संस्कृत में 'मुखपत्रि' अर्थात् मुख का ढक्कन जिससे सूक्ष्म जीव उड़ने वाले मुख के अन्दर प्रवेश न कर सकें, इसलिये छोटा, सा कपड़ा मुख पर बांधते हैं, उसे मुख पत्ति कहते हैं।

पुनः देखिए! महात्मा मोहनदास करमचन्द गाधी विरचित आरोग्य दिग्दर्शन पृष्ठ १२५२ हवा के विषय में लिखते हैं कि (हमारी कुटेवों से हवा कैसे खराब होती है और उसे खराब होने से कैसे बचाया जा सकता है, यह बात हम जान चुके। अब हम इस बातका विचार करते हैं कि हवा कैसे ली जावे)

हम पहले प्रकरण में लिख आये हैं कि हवा लेने का मार्ग नाक है, मुँह नहीं। इतने पर भी बहुत ही कम ऐसे मनुष्य हैं जिन्हे श्वास लेना आता हो। बहुत से लोग मुँहसे श्वास लेते हुए भी देखे जाते हैं। यह टेव नुकसान करती है। बहुत ठंडी हवा

जो मुँह से ली जाय तो प्राय: सरदी हो जाती है, स्वर बैठ जाता है, हवा के साथ धूल के कण श्वास लेने वाले के फेफड़ों में घुस जाते हैं और फेफड़ो को वहुत नुकसान पहुँचाते हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव विलायत के शहरों में तुरंत पड़ता है, वहा पर वहुत कल कारखानों के कारण नवम्बर मास में बहुत ही फौग—पीली धूमस–होती है। उसमें वारीक वारीक काले धूल के कण होते हैं। जो मनुष्य इस धूल के कण–भरी हवा को मुँह से लेते हैं उनके थूँक में वह देखने में आती है। ऐसा अनर्थ न होने के लिए वहुतसी स्त्रियाँ जिन्हें नाक से श्वास लेने की आदत नहीं होती चेहरे पर जाली वाँधे रहती हैं। यह जाली चलनी का काम देती है। इसमें होकर जो हवा जाती है वह साफ जाती है। इस जाली को काममें आये वाद देखा जाय तो उस में धूल के कण मिलते हैं। ऐसी ही चलनी परमात्माने हमारे नाक में रक्खी है। नाक से ली हुई हवा गरम होकर भीतर उतरती है। इस वात को ध्यान में रख कर प्रत्येक मनुष्य को नाक के द्वारा ही हवा लेना सीखना चाहिये। यह कुछ मुश्किल नहीं है। जिन्हें मुँह खुला रखने की आदत पड़ गई हो उन्हें मुंह पर पट्टी वाध कर रात में सोना चाहिये। इससे लाचार उन्हें नाक से ही श्वास लेना पड़ेगा।

वैद्यक की राह से भी आरोग्यता के लिये भी मुख वांधना अच्छा माना है।

परिशिष्ट

अब यह ग्रन्थ समाप्त होगया है परन्तु मेरे जो अन्तिम उद्गार हैं वे भी मैं अपने विचार शील पाठकों पर प्रकट कर देना चाहता हूं। पाठकों! और कामों में उच्छृङ्खलता विशेष हानि कर नहीं परन्तु धार्मिक उच्छृङ्खलता तो किसी प्रकार

भी अच्छी नहीं है। धार्मिक उच्छृङ्खलता से संसार में जितनी क्षति हुई है उतनी और किसी से भी नहीं हुई होगी, और उस क्षति की पूर्ति आज तक नहीं हुई।

वाममार्गियों के अश्लील आचरणों एवम् दूषित ग्रन्थों ने आज तिहाई हिस्से की दुनियां को पथ भ्रष्ट कर रक्खी है। महाराज वेण को हुए आज कई हजार वर्ष होगए हैं परन्तु उसकी निन्दनीय प्रथाओं का अन्त आज तक भी नहीं हुआ और जब तक उन्ही बातों से ग्रन्थों के पवित्र पृष्ठ रंगे हुए रहेंगे तब तक उन का अन्त होना कठिन ही नहीं बल्के असंभव है।

यह सब धार्मिक उच्छृङ्खलताओं के ही तो परिणाम हैं। मैं पहले ही कह चुका हूं कि, भारत वर्ष श्रद्धालु देश है। इस में अन्ध विश्वासियों का ही सदा से बाहुल्य रहा है। यहां पर समाज जिसको बड़ा आदमी मान लेता है फिर उसके कार्यों को वह आलोचना की दृष्टि से कभी नहीं देखता। चाहे वह किसी को तार दे, अथवा डूबो ही दे। चुपचाप उसका अनुगमन करना ही समाज का कर्तव्य हो जाता है। और इसी लिए तो इस उक्ति का प्रादुर्भाव हुआ है "महाजनो येन गतः स पथा" अर्थात् महापुरुष जिस ओर होकर गए वही मार्ग है। और यदि महापुरुष ही उच्छृङ्खल अथवा पथ भ्रष्ट हो जाएं तो समाज की क्या दशा होती है? यही न, कि समाज पथ भ्रष्ट होजाता है।

यह देश धर्म का क्रीड़ा क्षेत्र है। यूरोप, एशिया इत्यादि देशों को धर्म की दीक्षा पूर्व काल में यहीं से मिला करती थी। यहीं के ऋषि मुनि और साधु सन्त सबके गुरु थे। और वे लोग द्वीपान्तर में परिभ्रमण कर धर्म प्रचार किया

करते थे। परन्तु इस भारत भूमि में अनीश्वरवादी और उच्छृ ङ्खल धर्म नहीं ठहर सका। गौतम बुद्ध के सिद्धान्त कुछ ऊंचे थे परन्तु वे अनीश्वरवादी थे अत: अन्य देशों में वे भले ही अपने धर्म का झंडा गाड़ने में समर्थ हुए हों परन्तु भारत वर्ष में उनका झण्डा उखड़ गया। आज भारत में उनका अनुयायी शायद कोई हो।

इसीसे मैं कहता हूं कि धार्मिक ऊच्छृङ्खलता कभी किसी दशा में अच्छी नहीं है। सनातन जैन धर्म की नींव अहिंसा पर खड़ी है उसमें हिंसा का प्रचार करना नितान्त भूल और अदूर दार्शता है।

मेरे मन्दिर मार्गीय साधु महात्माओं! सद्गृहस्थों!! आप लोग मुखवस्त्रिका को मुख पर नहीं बांधकर हाथ में रखने में बहुत बड़ी गलती कर रहे हैं। असंख्य अदृश्य प्राणियों की हत्या का दायित्व अपने ऊपर ले रहे हैं। कोई शास्त्र इसमें सहमत नहीं है फिर आप क्यों नहीं मानते हैं।

मैंने एक तरह से नहीं बल्कि हर तरह से सिद्ध कर दिया है कि मुखवस्त्रिका को मुख पर ही बांधना चाहिए। मैंने युक्ति वाद, शब्दार्थ, और शास्त्रों के निर्विवाद वीर वचन से साबित किया! आपके ग्रन्थों से साबित किया!! अन्यान्य धर्मावलम्बियों के ग्रन्थों से साबित किया!!! और साबित किया स्वास्थ्य की दृष्टि से। अर्थात् आयुर्वेद और डाक्टरी पुस्तकों से इसको लाभ दायक साबित किया है।

कई कुतर्कवादियों का कथन है कि, नाक वायु सेवन का मार्ग है उसमें कूड़ा छार आदि न प्रवेश करजाएं इसलिए कुदरत ने उसमें बाल उगाए है। इसी प्रकार हानि की सभावना होती तो प्रकृति मुंह की आड़ के लिए भी जरूर कोई चमड़े की पट्टी अथवा बालों की रचना करती।

इसका जवाव यह है कि, प्रकृति ने जो होठों की रचना की है यह मुह का ढक्कन ही तो है। परन्तु कितनों ही की आदत मुंह खोलकर चलने की और मुंह से वायु ग्रहण करने की होती है ऐसी दशा में एक मुखवस्त्रिका ही दूषित वायु की रक्षा कर सकती है।

हम तार्किकों से यह पूछते हैं, कि कुदरत ने तो तुम्हारे शरीर का ढक्कन कुछ नहीं वनाया और तुम कपड़े क्यों पहनते हो? पदरक्षा(पगरखी)इत्यादि की तुम्हें क्या आवश्यकता है?

मनुष्य मात्र का धर्म है कि प्रकृति के कामों में मदद करे। गन्दी हवा के परिहारार्थ सुगन्धित द्रव्यों का प्रयोग करते हैं। वर्षा शीत घाम की रक्षा के लिये नये २ प्रकार के मकानों और वस्त्र आदि पदार्थों की मनुष्य रचना करते हैं। यह प्रकृति की मदद नहीं तो और क्या है?

हम लोगों का कार्य्य समाज और जाति को उन्नति के मार्गों में प्रवृत्त करने और उनको धर्माचरण की शिक्षा देने का है। उसका पालन यथाशक्ति मैंने भी किया है अर्थात् एक उपयोगी विषय पाठकों को समझाने का प्रयत्न किया है। इसलिए कि उनको भूले हुए मार्ग में लाने का प्रयास किया है। परन्तु यदि इसके वदले में वे क्रोधित होकर मुझे गालियां देंगे तो मेरा क्या विगाड़ है उनकी क्षमता और उदारता प्रकट होगी

अव मैं अपने प्यारे पाठक पाठिकाओं से प्रार्थना करता हूं कि मेरे शब्दों में कहीं कठोरता आगई हो तो आप लोग उन शब्दों के विनम्र और हितकारी भावों की ओर ही दृष्टिपात करते हुए मुझे क्षमा करदें।

ॐ ! शान्ति !! शान्ति !!! शान्ति

करते थे। परन्तु इस भारत भूमि मे अनीश्वरवादी और उच्छृङ्खल धर्म नही ठहर सका। गौतम बुद्ध के सिद्धान्त कुछ ऊंचे थे परन्तु वे अनीश्वरवादी थे अत: अन्य देशों में वे भले ही अपने धर्म का झंडा गाड़ने में समर्थ हुए हों परन्तु भारत वर्ष में उनका झण्डा उखड़ गया। आज भारत में उनका अनुयायी शायद कोई हो।

इसीसे मै कहता हूं कि धार्मिक ऊच्छृङ्खलता कभी किसी दशा में अच्छी नहीं है। सनातन जैन धर्म की नीव अहिंसा पर खड़ी है उसमें हिंसा का प्रचार करना नितान्त भूल और अदूर दार्शिता है।

मेरे मन्दिर मार्गीय साधु महात्माओं! सद्गृहस्थो!! आप लोग मुखवस्त्रिका को मुख पर नहीं वांधकर हाथ में रखने मे बहुत बड़ी गलती कर रहे है। असंख्य अदृश्य प्राणियों की हत्या का दायित्व अपने ऊपर ले रहे हैं। कोई शास्त्र इसमें सहमत नही है फिर आप क्यों नहीं मानते हैं।

मैने एक तरह से नहीं वल्कि हर तरह से सिद्ध कर दिया है कि मुखवस्त्रिका को मुख पर ही वांधना चाहिए। मैने युक्तिवाद शब्दार्थ, और शास्त्रों के निर्विवाद वीर वचन से सावित किया! आपके ग्रन्थों से सावित किया!! अन्यान्य धर्मावलम्बियों के ग्रन्थों से सावित किया!!! और सावित किया स्वास्थ्य की दृष्टि से। अर्थात् आयुर्वेद और डाक्टरी पुस्तकों से इसको लाभ दायक सावित किया है।

कई कुतर्कवादियों का कथन है कि, नाक वायु सेवन का मार्ग है उसमें कूड़ा छार आदि न प्रवेश करजाएं इसलिए कुदरत ने उसमें वाल उगाए है। इसी प्रकार हानि की संभावना होती तो प्रकृति मुह की आड़ के लिए भी जरूर कोई चमड़े की पट्टी अथवा वालो की रचना करती।

इसका जवाब यह है कि, प्रकृति ने जो होठों की रचना की है यह मुंह का ढक्कन ही तो है। परन्तु कितनों ही की आदत मुंह खोलकर चलने की और मुंह से वायु ग्रहण करने की होती है ऐसी दशा में एक मुखवस्त्रिका ही दूषित वायु की रक्षा कर सकती है।

हम तार्किकों से यह पूछते हैं, कि कुदरत ने तो तुम्हारे शरीर का ढक्कन कुछ नहीं बनाया और तुम कपड़े क्यों पहनते हो? पदरक्षा(पगरखी)इत्यादि की तुम्हें क्या आवश्यकता है?

मनुष्य मात्र का धर्म है कि प्रकृति के कामों में मदद करे। गन्दी हवा के परिहारार्थ सुगन्धित द्रव्यों का प्रयोग करते हैं। वर्षा शीत घाम की रक्षा के लिये नये २ प्रकार के मकानों और वस्त्र आदि पदार्थों की मनुष्य रचना करते हैं। यह प्रकृति की मदद नहीं तो और क्या है?

हम लोगों का कार्य्य समाज और जाति को उन्नति के मार्गों में प्रवृत्त करने और उनको धर्माचरण की शिक्षा देने का है। उसका पालन यथाशक्ति मैंने भी किया है अर्थात् एक उपयोगी विषय पाठकों को समझाने का प्रयत्न किया है। इसलिए कि उनको भूले हुए मार्ग में लाने का प्रयास किया है। परन्तु यदि इसके बदले में वे क्रोधित होकर मुझे गालियां देंगे तो मेरा क्या बिगाड़ है उनकी क्षमता और उदारता प्रकट होगी

अब मैं अपने प्यारे पाठक पाठिकाओं से प्रार्थना करता हूं कि मेरे शब्दों में कहीं कठोरता आगई हो तो आप लोग उन शब्दों के विनम्र और हितकारी भावों की ओर ही दृष्टिपात करते हुए मुझे क्षमा करदें।

ॐ ! शान्ति !! शान्ति !!! शान्ति

॥ श्री ॥

खुश खबर ।



सर्व सज्जनों को विदित हो कि वैशाख सुदि ५ संवत् १९८६ को श्रीजैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति ने "श्रीजैनोदय प्रिंटिंग प्रेस" के नाम से एक प्रेस कायम किया है। इस प्रेस में हिंदी, अंग्रेजी, संस्कृत, मराठी का काम बहुत अच्छा और स्वच्छ तथा सुन्दर छापकर ठीक समय पर दिया जाता है। छपाई के चारज़ेज़ वगैरा भी किफायत से लिये जाते है।

अतःएव धर्म प्रेमी सज्जन, छपाई का काम भेजकर धर्म परिचय देने की कृपा करेंगे, ऐसी आशा है।

निवेदकः—

मैनेजर

श्रीजैनोदय प्रिंटिंग प्रेस,

रतलाम.

